अथातो आत्म जिज्ञासा

आचार्य उमास्वामी द्वारा विरचित

'तत्त्वार्थसूत्र'

की अनुत्तर जिज्ञासा हिन्दी टीका का
सम्पादकीय एवं प्रस्तावना का संकलन

प्रज्ञाश्रमण मुनि अमितसागर

प्रकाशक

श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान

श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी,
कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

कृति—अथातो आत्म जिज्ञासा, **पुष्प संख्या**—छ्यालीस
कृतिकार—प्रज्ञाश्रमण मुनि अमितसागर
पावन प्रसङ्ग—बीसवीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्रीशान्तिसागर जी के संयम शताब्दी महोत्सव २०१९-२०२० के उपलक्ष्य में आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज के पट्ट शिष्य प्रज्ञाश्रमण मुनिश्री अमितसागर जी के ससंघ सान्निध्य में सन् २०२१ में प्रकाशित।

[पुस्तक प्राप्ति स्थान]

१. चन्द्रा कॉपी हाऊस, हास्पिटल रोड, आगरा (उ०प्र०)
२. वास्ट जैन फाउण्डेशन ५९/२ बिरहाना रोड, कानपुर (उ०प्र०)
मो०: ०९४५१८७५४४८
३. आलोक जैन, हनुमानगंज
C/o श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०) मो०: ०९९९७५४३४१५
४. आचार्य श्रीशिवसागर ग्रन्थमाला, श्रीशान्तिवीर नगर, श्रीमहावीर जी, जिला–करौली (राज०)
५. श्रीदिगम्बर जैन अष्टापद तीर्थ, बिलासपुर चौक, धारूहेड़ा, गुडगाँव (हरि०) मो०: ०९३१२८३७२४०
६. प्राचीन आर्ष ग्रन्थालय, जैन बाग, सहारनपुर (उ०प्र०)
मो०: ०९४१०८७४७०३
७. विशुद्ध ग्रन्थालय, २१ सर्वऋतु विलास, उदयपुर (राज०)
८. श्रीदिगम्बर जैन मन्दिर, कटरा सेवा कली, नया शहर, इटावा (उ०प्र०)

संशोधित संस्करण—तृतीय; सन् २०२१
प्रतियाँ— २०००
मूल्य— २५ ₹ — अथातो आत्म जिज्ञासा
मुद्रक— महेन्द्रा पब्लिकेशन प्रा०लि०, ई–४२-४३-४४, सेक्टर ७, नोएडा (उ०प्र०)

समर्पण

पावन-प्रसङ्ग

पावन तीर्थ सम्मेदशिखर जी की यात्रा का प्रवास; सन् १९९६, सब्जी मण्डी, बादशाही नाका, अहिंसा चौक, दिगम्बर जैन धर्मशाला, कानपुर (उ०प्र०); एक नन्हीं-सी ४-५ वर्ष की बालिका की **"अनुत्तर जिज्ञासा"** से उत्पन्न समाधान के लिए—

महाराज श्री ! आपको सबसे प्यारा कौन ?

हमने कहा—हमारी आत्मा।

उसने पुनः प्रश्न किया—उसके बाद कौन ?

हमने अविलम्ब कहा—मेरी माँ।

उसने पुनः प्रश्न किया—ऐसा क्यों ?

हमने अविचारित कहा कि—

"आत्मा के अस्तित्व को आकार देने वाली होती है माँ।"

"संसार में सबसे परमोपकारी होती है माँ की देह।"

जिस माँ ने मुझे आत्महित हेतु, बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्रीशान्तिसागर जी महाराज के तृतीय पट्टाधीश आचार्य शिरोमणि श्रीधर्मसागर जी महाराज के पावन करकमलों में समर्पित कर दिगम्बरत्व दीक्षा की प्रेरणा दी।

जो स्वयं; परम्परा पट्टाचार्य श्रीअभिनन्दनसागर जी महाराज के करकमलों से आत्महित में प्रवेश करने वाली; अक्षर-ज्ञान-विहीना, व्यवहार-धर्म प्रवीणा, दया-करुणा-वात्सल्य-सेवा की सजीव मूर्ति; **आर्यिका प्रवेशमती माता जी बनीं।**

आत्महित में सतत जाग्रत रखने वाली, षोडश नाम वाली—

श्रीजिन-मुखोद्भूत सरस्वती-जिनवाणी माता के पावन कर कमलों में सादर-सविनय समर्पित "अनुत्तर जिज्ञासा" कृति ।

३-१०-२०१४ *प्रज्ञाश्रमण अनगार मुनि अमितसागर*

टिप्पणियों में उल्लिखित ग्रन्थों की सङ्केत-सूची

अन० धर्मा०	अनगार-धर्मामृत
अ० सह०	अष्टसहस्त्री
आ० सा०	आचारसार
आ० नु०	आत्मानुशासन
आ० मी०	आप्तमीमांसा
आ० प०	आलापपद्धति
का० अनु०	कार्तिकेयानुप्रेक्षा
गो० क०	गोम्मटसार कर्मकाण्ड
गो० जी०	गोम्मटसार जीवकाण्ड
च० प्र० च०	चन्द्रप्रभचरित
तत्त्व० ज्ञा० त०	तत्त्वज्ञानतरङ्गिणी
तत्त्व० सा०	तत्त्वार्थसार
तत्त्व० सू०	तत्त्वार्थसूत्र
तत्त्व०श्लो०वा०	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार
तिरु०	तिरुक्कुरल
द्र० सं०	द्रव्यसंग्रह
ध० पु०	धवल पुस्तक
न० च०	नयचक्र
न्या० सू०	न्यायसूत्र
न्या० दी०	न्यायदीपिका
न्या० वि०	न्यायविनिश्चय-विवरण
नि० सा०	नियमसार
प्र० सा०	प्रवचनसार
पर० प्र०	परमात्मप्रकाश

पं० का०	पञ्चास्तिकाय
पु० सि०	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
महा० पु०	महापुराण
यश० ति० च०	यशस्तिलक-चम्पू
रत्नक० श्रा०	रत्नकरण्ड-श्रावकाचार
र० सा०	रयणसार
रा० वा०	राजवार्तिक
वर्द्ध० पु०	वर्द्धमान पुराण
स्व० स्तो०	स्वयम्भूस्तोत्र
स० सा०	समयसार
सर्वा० सि०	सर्वार्थसिद्धि
सह० ना०	सहस्रनाम
सा० धर्मा०	सागार-धर्मामृत

पद सङ्केतावली

अ०	अध्याय
पृ०	पृष्ठ
गा०	गाथा
भा०	भाग
वार्ति०	वार्तिक
वृ०	वृत्ति
श्लो०	श्लोक
सू०	सूत्र
प्रका०	प्रकाशक
प्र०	प्रत्यक्ष
परो०	परोक्ष

प्रकाशकीय

गुरुदेव कहा करते हैं कि दर्पण और दीपक कभी झूठ नहीं बोलते हैं। जलते हुए दीपक को कहीं भी ले जा सकते हैं, किन्तु अँधेरे को कहीं नहीं ले जा सकते हैं।

जैन धर्म का आगम-सिद्धान्त; दर्पण एवं जलते हुए दीपक की तरह है। नकटे या कुरूप को दर्पण दिखाने से उसके कषाय उत्पन्न होती है। चोर-व्यभिचारी-व्यसनी को रोशनी का भय सताता है।

अज्ञानी; ज्ञान-दीपक का सामना नहीं कर सकता है। व्यसनी; दर्पण की झलक को सहन नहीं कर पाता है।

दर्पण; आदर्श को कहते हैं। दर्प जिसमें नहीं हो वह दर्पण है। दर्पण में देखने सब ललकते हैं, किन्तु दर्पण किसी को देखने नहीं ललकता; यही तो उसका आदर्श है।

दर्पण और दीपक को डराने-धमकाने वाले पत्थर और आँधियाँ हैं। जो दर्पण; पत्थर से नहीं डरता वही दर्पण है। जो दीपक; आँधियों से नहीं घबड़ाता वही दीपक है।

हम अपनी बात इन्हीं दो पूर्ण सत्यों के साथ प्रारम्भ करते हैं। पूज्य गुरुदेव से फिरोजाबाद जनपद की जनता; सन् १९९२ से परिचित है। परिचित हैं उनके दर्पणवत् स्वभाव से; धनिक-निर्धन, पूजक-निन्दक दोनों समान। परिचित हैं उनके दीपकवत् साहस से। वो कभी अपना परिचय स्वयं इस अन्दाज में देते हैं—

आँधियों के बीच जो जलता हुआ मिल जाएगा।
उस दिये से पूछना मेरा पता मिल जाएगा॥
अय आँधियों! अपनी औकात में रहो।
हम तो जलते हुए दिये हैं जलते ही रहेंगे॥
देख चिरागों के शोले मञ्जिल से इशारा करते हैं।
तू हिम्मत हारा जाता है कहीं हिम्मत हारा करते हैं?

हम जनपदवासी; सन् १९९२ से इस जलते हुए दीपक को देख रहे हैं। जो व्यक्ति, परिवार, समाज, गाँव, शहर, राज्य, राष्ट्र एवं विश्व के लिए; अपने प्रकाश से मार्गदर्शन कर रहा है।

इस जलते हुए दीपक को; कितनी आँधियों-तूफानों ने बुझाने की कोशिश की, लेकिन यह दीपक बुझने की जगह और भी अधिक प्रकाशमान हो गया और अन्धी-आँधियाँ; हार मानकर बैठ गईं।

इस दर्पण को; कितने ही छोटे-छोटे कङ्कण ही नहीं; पहाड़ जैसे पत्थर भी धमकी देते रहे, लेकिन दर्पण; दर्पण ही रहा, उन बेजान पत्थरों के सामने समर्पित नहीं हुआ।

बस; इन्हीं दो उपमाओं में इस व्यक्ति का व्यक्तित्व समाया है। ख्याति-पूजा-लाभ से दूर, दूरदर्शन के प्रदर्शन एवं पोस्टरों के पोस्ट की परछाइयों से विलग, अनेक उपाधियों और पद-प्रतिष्ठा की होड़ से उदासीन।

एक वैज्ञानिक की तरह वस्तु-तत्त्व की तह में जाकर उसे समझना उनके स्वभाव में है। बड़े-बड़े ग्रन्थों के रहस्यों को सरलता से; **स्वरूप भेद और स्वामी भेद की कुञ्जी से; आगम, युक्ति, गुरूपदेश एवं स्वानुभव से सिद्ध करना उनका लक्ष्य रहता है।**

वैसे तो इतिहास में कोई भी आचार्य-गुरुजन अपना भौतिक परिचय लिखकर नहीं गए, किन्तु उनके जीवन्त कृत्य ही उनके अमर परिचय हो गए। गुरु जी कहा करते हैं कि—

अच्छे कार्य स्वयं में प्रशंसनीय हुआ करते हैं, अतः हमें कभी; दूसरों से प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए।

फिर भी हम भक्त-श्रद्धालुजन अपने इष्ट की आराधना-स्तुति करके पुण्योपार्जन कर लेते हैं, यह एक उद्देश्य है। दूसरा उद्देश्य; सब कोई उनके बारे में; उनके परिचय से सही परिचित हों प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, अतः इस उद्देश्य से भी उनका परिचय देना अनिवार्य है।

आप में देखा है हम सबने; कुन्दकुन्दाचार्य का अध्यात्म और उनके जैसा धर्मायतनों को बिना हिंसा के बचाने वाला **"बलात्कारगण"**, मैनपुरी एवं फिरोजाबाद इनके उदाहरण हैं।

समन्तभद्राचार्य जैसा शास्त्रार्थ करने का अदम्य साहस एवं फिरोजाबाद जिले के चन्द्रवाड़ के किले में मूर्तियाँ प्रकटाने वाला गौरव पूर्ण अतिशय इसका प्रमाण है।

पूज्यपादाचार्य जैसी आगमोक्त लक्षणावली आप में हैं, क्योंकि आप पूज्यपादाचार्य एवं समन्तभद्राचार्य के आगम को सिरहाने रखकर सोते हैं, यह अनुत्तर जिज्ञासा टीका इसका जीवन्त प्रतीक है।

अकलङ्काचार्य जैसे प्रमाणों की प्रचुरता; उनकी वाणी एवं लेखनी में विराजमान रहती है। आप कहते हैं, एक दर्पण को देखने के लिए दूसरे दर्पण की जरूरत नहीं होती है, अतः एक प्रमाण के लिए दूसरे प्रमाण की जरूरत नहीं होती है। **जिसको जिनवाणी-आगम-सिद्धान्त में ही श्रद्धा नहीं है, उसे कितने ही आगम-सिद्धान्त दिखला दो; मानने वाला नहीं है।**

मानतुङ्गाचार्य जैसी ताले टूटने वाली आश्चर्यकारी घटनाओं से फिरोजाबाद जनपद अनजान नहीं है। वादिराज मुनिराज जैसी आस्था से असाध्य रोग से मुक्ति के चमत्कारी दृश्य जिनके स्वयं पैदा हो गए।

जिनसेनाचार्य जैसे निर्विकार-अनासक्त भाव; जो कर्त्ता में अकर्त्ता, भोक्ता में अभोक्ता की अनुभूति कराते हैं।

अमृतचन्द्राचार्य जैसे निर्नाम निर्माण–कहीं-किसी भी जगह अपने व्यक्तिगत नाम के कोई आश्रम-मठ-मन्दिर, संस्थान आदि नहीं बनवाये। आप कहते हैं कि—

जिस खुदा ने ये दुनिया बनाई,
उसने अपनी फोटो नहीं छपाई।

आपका हमेशा शिक्षा एवं चिकित्सा पर जोर रहता है। शिक्षा चाहे लौकिक हो या पारलौकिक; सभी को प्रोत्साहन देते हैं। छोटे बच्चों से पढ़ाई के लिए पूछते हैं कि तुम्हें क्या बनना है ? **"कुर्सी बिछाने वाला चपरासी या कुर्सी पर बैठने वाला ऑफिसर। बड़े बच्चों को कहते हैं कि तुम्हारी चार साल की पढ़ाई का जीवन; तुम्हारे चालीस साल बना देगा, फालतू वातावरण से बचो।"**

बालकों से लगाव, युवाओं को प्रेरणा, वृद्धों की सेवा-वैय्यावृत्ति, समाधिस्थों की साधना में आपका निर्यापकाचार्यत्व अनुभूत आदर्श है।

आपकी प्रथम प्रकाशित कृति मन्दिर है जो अद्यावधि हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नड़ एवं अंग्रेजी संस्करणों में; लगभग दो लाख प्रतियों से भी अधिक प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपने बाल साहित्य के रूप में बाल-गीत, बाल कहानियाँ, जैन चित्र कथायें, बाल विज्ञान के क्रमशः पाँच भाग, आसान उच्चारण, सरल उच्चारण, अनुपम पाठसंग्रह, रयणसार, द्रव्य संग्रह द्वारा मूलपाठों को उच्चारण-पढ़ने योग्य बनाया है।

इसी के साथ कई ग्रन्थों के प्रकाशन की प्रेरणा दी; जिनमें धर्म परीक्षा, सम्यक्त्व कौमुदी, दानशासन, दान चिन्तामणि, धर्मध्वज विशेषाङ्क, भक्तामर शतद्वयी, सिरिभूवलय, नाममाला, चौबीस ठाणा, गुरु-शिष्य दर्पण, बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, श्रीसिद्धचक्र विधान; कवि-सन्तलाल जी, जैन-अभिषेक पाठ संग्रह, चौंतीस स्थान दर्शन आदि कृतियाँ कुछ प्रकाशित हैं, कुछ प्रकाशनाधीन हैं।

प्रवचन सङ्कलन में; आँखिन देखी आत्मा—इसमें उत्तम-क्षमादि दशधर्मों के स्वरूप को, आगम, विज्ञान आदि के आधार पर विवेचित किया गया है। दशलक्षण पर्वों में विद्वानों द्वारा इसका उपयोग किया जाता है।

अन्तरङ्ग के रङ्ग—इसमें षट्लेश्या का वर्णन किया गया है। आप अपने परिणामों का स्वयं निरीक्षण करें। अपने अच्छे-बुरे भावों की पहचान होती है।

अनुत्तर यात्रा—सोलह कारण भावनाओं का औपन्यासिक विश्लेषण है कि साधारण-सी आत्मा त्रैलोक्य पूज्य तीर्थङ्कर पद तक कैसे पहुँचती है ? कई संस्करणों में प्रकाशित हो चुके हैं।

नीतिशास्त्र; कुरल काव्य कृति—उन नीतियों का संग्रह है जो दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य ने सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय संकलित की थीं। जिनकी आज; व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य एवं राष्ट्र के कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक करने की परम आवश्यकता है। इसका सम्पादन किया जो प्रभात प्रकाशन दिल्ली से २०१० में प्रकाशित हुआ एवं इसका दूसरा संस्करण; गोम्मटेश महामस्तकाभिषेक २०१८ के उपलक्ष्य में प्रकाशित हुआ।

आपकी "बोलती माटी" महाकाव्य कृति—सरलतम भाषा की एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसमें एक अकिञ्चन्य माटी को पात्र बनाकर, मद से भरे पात्रों को निर्मद बना दिया। तुच्छ से उच्च बनाने की शिक्षा देने वाली कृति; आज नहीं तो कल इसकी आवश्यकता अवश्य होगी। इसका प्रथम संस्करण; लगभग बीस वर्ष पूर्व सन् १९९५ में प्रकाशित हुआ था और इसका संशोधित संस्करण सन् २०१८ में प्रकाशन हो चुका है।

अमृतचन्द्राचार्यकृत तत्त्वार्थसार कृति—आपके द्वारा सम्पादित आगम की यह प्रथम कृति है जिसका श्रीधर्मश्रुत ज्ञान, हिन्दी टीका के रूप में सम्पादन; सन् २०१० में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित किया गया। अद्यावधि इसके भी लगभग ५ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

आज हमें यह परम सौभाग्य प्राप्त हो रहा है कि हम पूज्य मुनिश्री के द्वारा सम्पादित तत्त्वार्थसूत्र की अनुत्तर जिज्ञासा; हिन्दी टीका का प्रकाशन कर रहे हैं।

गुरुदेव के द्वारा संकलित, रचित, सम्पादित साहित्य में मुनिश्री की अयाचित वृत्ति से; दानदाता उदार मन से स्वेच्छया राशि से सहयोग करते हैं, उन दानी महानुभावों के हम आभारी हैं।

मुनिश्री द्वारा निर्देशित श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान, श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०)। जिसमें प्राचीन-हस्तलिखित हजारों पाण्डु-लिपियाँ एवं प्राचीन-अर्वाचीन प्रकाशित- उपलब्ध-अनुपलब्ध ग्रन्थ भण्डार जैन धर्म पर शोध करने वालों के लिए उपलब्ध है एवं प्राचीन साहित्य-आगम-सिद्धान्त का संरक्षण-संवर्द्धन हो रहा है। इसके लिए सकल जैन समाज मुनिश्री के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करती है।

निवेदक

श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान

श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी,
कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०)–२८३२०३

जो पुस्तक पढ़ने योग्य है, वह खरीदने योग्य भी है—
पण्डित जवाहरलाल नेहरू

सम्पादकीय

"अनुत्तर-जिज्ञासा" तत्त्वार्थसूत्र–मोक्षशास्त्र की एक ऐसी प्रश्नोत्तरी टीका है, जिसके दशों अध्यायों में उनकी उत्थानिका के साथ प्रत्येक सूत्र की भूमिका–जिज्ञासा द्वारा सूत्र का अवतरण हुआ है।

विज्ञान का अवतरण **"ऐसा क्यों है ?"** इस जिज्ञासा से होता है और उस जिज्ञासा के समाधान को **आविष्कार** कहा जाता है। स्कूल में **पढ़ाई** होती है, उसमें शिक्षक यह बतलाता है कि **पुस्तक में क्या लिखा है ?** अर्थात् पुस्तक पढ़ना सिखलाता है, किन्तु **ट्यूशन** में शिक्षक यह बतलाता है कि **पुस्तक में ऐसा क्यों लिखा है ?** जिससे ट्यूशन में पढ़ने से जल्दी समझ में आता है, इसीलिए **ट्यूशन** की विधि इस टीका में अपनाई है, जिससे तत्त्वार्थसूत्र की बात समझ में जल्दी आवे।

तत्त्वार्थसूत्र; जैनधर्म का सर्वमान्य ग्रन्थ है, जिसे उमास्वामी आचार्य ने परम्परागत; आगम-युक्ति-गुरु उपदेश एवं स्वानुभव प्रत्यक्ष की कसौटी पर कसकर लिपिबद्ध किया है–रचा है।

अद्यावधि तत्त्वार्थसूत्र पर समन्तभद्राचार्य, पूज्यपादाचार्य प्रभृति भास्करनन्दी आचार्य तक की संस्कृत टीकायें एवं जयचन्द जी छाबड़ा से लेकर अद्यावधि उन संस्कृत टीकाओं के भाषानुवाद-वचनिकायें उपलब्ध हैं।

इसके साथ-साथ ही कई साधु-मुनि-आचार्य, आर्यिकाओं एवं व्रती, विद्वान्-पण्डितों के द्वारा संक्षेप-प्रश्नोत्तरी टीकायें प्रकाशित की गयीं।

लगभग पच्चीस वर्षों से तत्त्वार्थसूत्र की संस्कृत टीकाओं सहित हिन्दी के संक्षिप्त सूत्रार्थ-टीकाओं को पढ़ने-पढ़ाने का क्रम जारी है, जिससे मूलसूत्र एवं संस्कृत टीकाओं सहित हिन्दी टीकाओं के मूल शब्दों का विश्लेषण करने का अनुभव प्राप्त हुआ।

मूलसूत्रों में कहीं-कहीं लिपिकारों के कारण व्याकरण (सन्धि) के नियम टूटे हैं तो कहीं-कहीं पाठ भेद से उन्हें स्वीकार कर लिया गया है। जैसे–

खण्डाकार रहित—

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।

एकसमयाविग्रहा।

परतः परतः पूर्वा पूर्वानन्तरा।

संख्येयासंख्येयाश्च।

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च।

खण्डाकार सहित—

मतिः स्मृतिः सञ्ज्ञा चि**न्ताऽभि**निबोध इत्यनर्थान्तरम्।

एकसम**याऽवि**ग्रहा।

परतः परतः पूर्वा पू**र्वाऽन**न्तरा।

सङ्ख्ये**याऽस**ङ्ख्येयाश्च।

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छा**याऽऽत**पोद्योतवन्तश्च।

ऐसे कई प्रसङ्ग हैं जहाँ सवर्ण सन्धि में (ऽ) खण्डाकार चिह्न का प्रयोग हुआ है। एक बार कुछ व्रती-विद्वानों से चर्चा करने पर ज्ञात हुआ कि न्याय के आचार्यों ने; **जैसे**–समन्तभद्राचार्य, अकलङ्कदेवाचार्य आदि ने सन्धि विग्रह के दोष से बचने के लिए (ऽ) खण्डाकार चिह्न का प्रयोग किया है।

शब्दों के बीच-बीच में जो एस (ऽ) अकार का चिह्न है, उसे **अविग्रह** भी कहते हैं। अ अर्थात् अ का विग्रह यानि शरीर। जो अ का शरीर है, उसे अविग्रह कहते हैं। इस अविग्रह चिह्न का उच्चारण नहीं होता है। इस चिह्न का नाम खण्डाकार भी है।

ऽ=अ ह्रस्व / ऽऽ=आ दीर्घ / ऽऽऽ=आ प्लुत / एक "ऽ" चिह्न में ह्रस्व अ लुप्त है। दो "ऽऽ" चिह्न में दीर्घ आ लुप्त है। तीन

"ऽऽऽ" चिह्न या इससे अधिक में प्लुत होता है अर्थात् अवर्ण को जैसे सङ्गीत में बहुत देर तक खींचते हैं, उसे प्लुत कहते हैं।

राजवार्तिक में कई स्थानों पर अवर्ण की सवर्ण सन्धि में खण्डाकार का प्रयोग किया है, जिससे सन्धि विग्रह करते समय विश्लेषण का अतिक्रम न हो, अतः कुछ खास पदों के साथ ही इनका प्रयोग हुआ है।

जैसे–मतिः स्मृतिः सञ्ज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध...............इसमें चिन्ताऽभिनिबोध में (ऽ) खण्डाकार चिह्न दिया है; कारण कि यदि बिना खण्डाकार चिह्न के सूत्र को चिन्ताभिनिबोध इस प्रकार लिखने से जब सूत्र का सन्धि विग्रह करेंगे तो सन्धि विग्रह से अनभिज्ञ एवं मूलशब्द के भाव से अनभिज्ञ लोग चिन्ता-अभिनिबोध की जगह आभिनिबोध का विग्रह कर सकते हैं, अतः इस दोष से बचने के लिए (ऽ) खण्डाकार चिह्नों का उपयोग किया गया है। दीर्घ आकार के लिए (ऽऽ) खण्डाकार चिह्न दिया गया है, अतः यह कोई दोष नहीं है। इतना विशेष ध्यान रखना कि (ऽ-ऽऽ) खण्डाकार चिह्नों का उच्चारण नहीं होता है अर्थात् वे साइलेन्ट रहते हैं।

दूसरा नियम–"एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः" सूत्र के अनुसार जब अकार का लोप होता है तब वहाँ भी (ऽ) खण्डाकार चिह्न लगाया जाता है। **जैसे**–यदि सोऽहं की जगह सोहं लिखे तो सन्धि विग्रह में स+उहं बनेगा, जिससे अर्थ का अनर्थ हो जायेगा, अतः सन्धि विग्रह की सुविधा के लिए खण्डाकार चिह्न का उपयोग किया जाता है।

व्यञ्जन सन्धि में भी इसी प्रकार जहाँ पर व्यञ्जनों की वर्गों के अनुसार सन्धि होती है, वहाँ अनुस्वार (ं) का उपयोग किया गया है अर्थात् ङ्, ञ्, न्, ण्, म्, को अनुस्वार कर दिया है।

इन्हीं पदों को निम्न तरीके से भी लिखा है–

जैसे– जीवाजीवास्रव**बंध**संवरनिर्जरा..........।

व्यंजनस्यावग्रहः।

नैगमसंग्रह..........**वंभू**ता नयाः।

ज्ञानाज्ञान..........**पंच** भेदाः..........

संमूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म।

सकषायाकषाययोः **सांप**रायिकेर्यापथयोः।

इसी प्रकार कई स्थलों पर पूर्ण पदों में व्यञ्जन सन्धि के नियम टूटे हैं, किन्तु व्यञ्जनों के वर्गों की सन्धि निम्न प्रकार से कर लेना चाहिए—

जैसे– जीवाजीवास्रव**बन्ध**संवरनिर्जरा..........।

व्यञ्जनस्यावग्रहः।

नैगमसंग्रह..........**वम्भू**ता नयाः।

ज्ञानाज्ञान..........**पञ्च** भेदाः..........

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म।

सकषायाकषाययोः **साम्प**रायिकेर्यापथयोः।

तत्त्वार्थसूत्र पढ़ने में सबसे बड़ी समस्या है; उसका उच्चारण। सन्धि ज्ञान के अभाव में शब्दों का उच्चारण सही नहीं हो पाता है। संस्कृत के उच्चारण का अर्थ है—ह्रस्व-छोटा (।); दीर्घ-बड़ा (ऽ); विसर्ग (ः); अनुस्वार (ं); इन चारों के उच्चारण को सही बोलना। ह्रस्व यानि छोटा, दीर्घ यानि बड़ा, विसर्ग यानि बराबर का, अनुस्वार यानि अहंकारी। **छोटे, बड़े, बराबरी के एवं अहंकारी व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसका विवेक होना संस्कृति है।**

(१) अधिकांश गलती दूसरे अध्याय के सूत्र संख्या बत्तीस (३२) में होती है—सचित्तशीतसंवृता..........“तद्योनयः” इसे तद्यो-नयः; इस तरह पढ़ते हैं, किन्तु इसे तद्-योनयः इस तरह पढ़ना चाहिए, क्योंकि योनि शब्द का बहुवचन पद योनयः बनता है।

(२) इसी तरह तीसरे अध्याय का सूत्र संख्या उनतालीस (३९) तिर्यग्योनिजानां च को "तिर्यग्यो-निजानां च" पढ़ते हैं, किन्तु इसे "तिर्यग्-योनिजानां च" इस तरह पढ़ना चाहिए, क्योंकि इस सूत्र का अर्थ–तिर्यञ्च योनियों में उत्पन्न होने वालों की आयु; मनुष्यों की आयु के समान होती है; ऐसा होता है।

(३) इसी तरह छठवें अध्याय के सूत्र संख्या सोलह (१६) माया तैर्यग्योनस्य को माया तैर्यग्यो-नस्य ऐसा पढ़ते हैं, जबकि इसे माया तैर्यग्-योनस्य ऐसा पढ़ना चाहिए।

सूत्र उच्चारण विधि में सूत्र के साथ अल्पविराम (,) चिह्न लगाया है, जिससे शब्द उच्चारण को समय मिले एवं उच्चरित वर्ण; आगे-पीछे न हों, इससे सामूहिक पाठ का भी अनुभव मिलता है तथा नये सीखने वालों को सरलता मिलती है। इतना ध्यान रखें कि अल्पविराम की जगह थोड़ा रुककर नाक से हल्की श्वास अन्दर की ओर खींचे, जिससे सूत्र का उच्चारण सही गति से बना रहता है एवं अगले शब्द के उच्चारण की भूमिका भी बन जाती है।

गद्य भाषा के उच्चारण में कहीं-कहीं स्वराघात होता है, सर्वत्र नहीं, किन्तु कुछ उच्चारण सिखाने वाले सर्वत्र स्वराघात का नियम लगा देते हैं।

जैसे–प्रथम अध्याय के पहले सूत्र को ही लें—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥ इसे स्वराघात करके इस तरह पढ़ते हैं—सम्यग्दर्श**नग्ज्ञा**नचारित्राणि मोक्षमार्गः ऐसा स्वराघातपूर्ण उच्चारण गलत है।

स्वराघात करने के पहले स्वराघात विधि के नियम समझ लें कि स्वराघात क्या है और कहाँ लगता है ?

पद्य (छन्द विज्ञान) भाषा में स्वराघात विधि के नियम—

(१) जहाँ ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) के बाद में (सामने) संयुक्ताक्षर (दो व्यञ्जनों के जोड़ को संयुक्ताक्षर कहते हैं।) **जैसे**–प्र, द्य, ध्व, क्र, क्ष, त्र, ज्ञ, द्वि, त्त, स्व आदि हों तो स्वराघात विधि होती है।

अथवा

छन्द में जहाँ कहीं भी संयुक्ताक्षर के पहले ह्रस्व स्वर के उच्चारण में जोर या खिचाव पड़ता हो वहाँ स्वराघात विधि होती है। (छन्दशास्त्र; पिंगल-पीयूष) छन्द शास्त्र में आवश्यकता अनुसार छन्द की मात्रायें गिनते समय जहाँ गण के अनुसार दीर्घ मात्रा की जरूरत है, किन्तु वहाँ ह्रस्व-लघु मात्रा है एवं उसके सामने संयुक्ताक्षर है तो **स्वराघात करने से ह्रस्व स्वर; दीर्घ माना जाता है, किन्तु संयुक्ताक्षर एक मात्रा वाले ही गिने जाते हैं।**

जैसे–भक्तामर-प्रणत को लोग उच्चारण करते समय भक्तामरा या भक्तामरे पढ़ जाते हैं, परन्तु भक्तामर के **र** में जोर या खिचाव है एवं उसके आगे **प्रणत** का प्र संयुक्ताक्षर है, अतः स्वराघात विधि होती है।

ह्रस्व स्वर को संयुक्ताक्षर के प्रथम व्यञ्जन वर्ण से आघात (टकराने) होने पर उस संयुक्ताक्षर के प्रथम व्यञ्जन वर्ण का दो बार उच्चारण होता है, उसे ही स्वराघात कहते हैं।

जैसे–भक्तामर प्रणत, इसमें भक्तामर के **र्** वर्ण में अकार ह्रस्व है और प्रणत का **प्र** संयुक्ताक्षर है, अतः भक्तामर शब्द के उच्चारण के साथ **प्र** के **प्** का उच्चारण एक बार भक्तामर शब्द के साथ **भक्तामरप्** के रूप में होगा पुनः प्रणत शब्द का पूरा उच्चारण होता है। इसी प्रकार मणि-प्रभाणा में मणि के **ण्** में **इ** ह्रस्व स्वर होने से प्रभाणा के **प्र** के **प्** का उच्चारण पहले मणि शब्द के साथ **मणिप्** के रूप में होता है पुनः प्रभाणा का उच्चारण, **जैसे**–मणिप्-प्रभाणा। इसी प्रकार गुरु-प्रतिमोऽपि को **गुरुप्-प्रतिमोऽपि**। रपि-प्रवृत्तः को **रपिप् प्रवृत्तः**। अल्प-श्रुतं को

अल्पश्-श्रुतं। तव-प्रभावात् को **तवप् प्रभावात्**। फल-द्युति को **फलद्-द्युति**। मति-क्रम को **मतिक्-क्रम**। इसी प्रकार आगे भी लगाना चाहिए। भक्तामर जी में प्रायः द्वित्व उच्चारण में स्वराघात होने वाले स्वरों को नीचे लाइन (_) लगाकर चिह्नित कर दिया है।

(२) बस इतना ध्यान रहे कि जो अक्षर संयुक्त हैं, उसमें पहले व्यञ्जन का ही द्वित्व उच्चारण होगा। व्यञ्जन, विसर्ग, अनुस्वार एवं दीर्घ मात्रा के बाद यदि संयुक्ताक्षर है तब स्वराघात विधि नहीं होगी। **जैसे**–सम्यक् प्रणम्य, तं प्रथमं, जगत् त्रितय, नमः क्षिति, कस्ते क्षमः आदि शब्दों में स्वराघात विधि नहीं होगी, क्योंकि सम्यक् में क् व्यञ्जन है, तं में म् अनुस्वार है। जगत् में भी त् व्यञ्जन है। नमः क्षिति के नमः में विसर्ग है। कस्ते क्षमः के; ते में दीर्घ मात्रा है, इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

(३) जिस स् व्यञ्जन का उच्चारण इस् जैसा होता है, **जैसे**–इस्तोत्र, इस्तुति, इस्पष्ट ऐसा होता है एवं ऐसा स् व्यञ्जन चरण के पहले, बीच में या विसर्ग के सामने (बाद में) हो तो उस स् व्यञ्जन का उच्चारण लोप (साइलेन्ट) हो जाता है। **जैसे**–नॉलेज (KNOWLEDGE) शब्द में K-D साइलेन्ट हैं, उच्चारण लोप (साइलेन्ट) का अर्थ है, अक्षर या वर्ण लिखा होने पर भी उसका उच्चारण न हो।

जैसे–स्तोत्रैर् को इस्तोत्रैर् न पढ़कर तोत्रैर्, स्तोष्ये को तोष्ये, स्तुति को तुति। इसी तरह मुच्चैः स्थितं को मुच्चैः थितं। स्थगित को थगित। श्च्योतन् को च्योतन् पढ़ना। इस सबमें स्, श् साइलेन्ट हैं। इसी प्रकार **पद्य उच्चारण के अन्य प्रसङ्गों** में भी जानना चाहिए, क्योंकि जहाँ पर छन्द शास्त्र के गण-अनुसार उच्चारण में एक मात्रा बढ़ती है, वहाँ श्, स् के उच्चारण को लोप किया गया है।

जो स् व्यञ्जन; स्वर के सामने हैं तथा जिसका उच्चारण इस् जैसा होता है, उस स् व्यञ्जन का उच्चारण पहले स्वर के साथ हो

जाता है, लेकिन स्वराघात विधि (द्वित्व उच्चारण) नहीं होती है। **जैसे**–भक्तामरस्-तोत्र/परमागमस्-तुति/शिखरस्-थित/गुणस्-थान/परास्-थिति आदि।

(४) जिस स् व्यञ्जन का उच्चारण इस् जैसा नहीं होता है, उसका उच्चारण लोप (साइलेन्ट) नहीं होता है, लेकिन स्वर के सामने आने पर उस स् व्यञ्जन का स्वराघात (द्वित्व उच्चारण) हो जाता है। जैसे–महावीरस् स्वामी नयन पथगामी भवतु मे। ज्ञान स्वरूप को ज्ञानस् स्वरूप, लेकिन जो स् व्यञ्जन; चरण में पहले है उसका लोप नहीं होता है, उसे साथ में ही बोलते हैं। जैसे–स्वस्ति, स्वाति, स्वामी, श्याम, स्वाहा, स्वभाव, स्वरूप आदि।

(५) अनुस्वार (ं) के सामने स् व्यञ्जन हो तो साइलेन्ट न होकर अनुस्वार के साथ ही उच्चारण हो जाता है। जैसे–जल संस्थित जल संस्-थित/कर्तुं स्तवं-कर्तुंस्-तवं/संस्तवनं-सन्स्-तवनं/संस्मरण-सन्स्-मरण।

विशेष–पद्य–छन्द शास्त्र के उच्चारण के नियम **एक से लेकर पाँच तक मुख्य हैं,** इन्हें गद्य के उच्चारण में घटित न करें।

(६) विभक्ति का उच्चारण बाद में ही होता है। जैसे–मुद्द्योतकं को मुद्द्यो-तकं न बोलकर मुद्द्योत-कं, वालम्बनं को वालम्-बनं न बोलकर वालम्ब-नं, परमात्मने को परमात्-मने न बोलकर परमात्म-ने; बोलना चाहिए।

(७) शब्दों में उपसर्गों का उच्चारण पहले होता है तथा शब्दों में प्रत्ययों का उच्चारण बाद में होता है।

जैसे–उपसर्ग में–

अपवर्ग	— अप उपसर्ग	/	उपवर्ग	— उप उपसर्ग है।
उपगता	— उप उपसर्ग	/	उपयाति	— उप उपसर्ग है।
आपाद	— आ उपसर्ग	/	विगत	— वि उपसर्ग है।
अशेष	— अ उपसर्ग	/	उद्भूत	— उद् उपसर्ग है।

जैसे–प्रत्यय में—

मनुजत्व — मनुज में त्व प्रत्यय है।
परमेश्वरत्व — परमेश्वर में त्व प्रत्यय है।
गुणवान् — गुण में वान् प्रत्यय है।

जैसे–क्षयोपशम एवं भोगोपभोग पदों को उच्चारण करते समय कोई-कोई लोग क्षयो-पशम एवं भोगो-पभोग पढ़ते हैं, किन्तु सही उच्चारण क्षयोप-शम एवं भोगोप-भोग पढ़ना चाहिए। इस प्रकार और भी उपसर्ग एवं प्रत्ययों के उच्चारण के नियम आगे कहेंगे फिर भी इस दोष को दूर करने के लिए सूत्रों में हाईफन (-) लगाकर उसे उच्चारण योग्य बनाया है।

यदि स्वर-स्वर की सन्धि हो तो सन्धि स्वर का पहले उच्चारण होगा।

जैसे– स्वर्ग+अपवर्ग — स्वर्गा-पवर्ग।
कृत+अवकाश — कृताव-काश।
जीवित+आशाः — जीविता-शाः।
दावानल+अहि — दावानला-हि।

यदि सन्धि में व्यञ्जन; स्वर में जाकर मिला हो तो उस स्वर सहित व्यञ्जन का उच्चारण बाद में होता है।

जैसे– तरीतुम्+अलम्+अम्बुनिधिं — तरीतु-मल-मम्बु-निधिं
प्रभाणाम्+उद्द्योतकं — प्रभाणा-मुद्द्योतकं
वर्तिर्+अपवर्जित — वर्ति-रपवर्जित

इसके कुछ अपवाद नियम भी हैं।

जैसे–सदसद् को स-दसद् न कहकर सद-सद् पढ़ना, क्योंकि इसके सन्धि विश्लेषण में सद्+असद् पढ़ा जाता है। यदि स-दसद् पढ़ा जायेगा तो स का अर्थ सहित एवं दसद् का कोई अर्थ न होने से अनर्थ होता है। सद् अस्तित्ववाची है, अतः सद-सद् पढ़ते समय

पहले सद को आराम से तथा **दूसरे सद् को जल्दी** बोलने से उच्चारण सही आ जाता है।

रेफ (र्) की मात्रा तीन प्रकार से लगती है। र् को रेफ कहते हैं।

(१) स्वर सन्धि में यदि र्, व्यञ्जन के पहले है तो रेफ (र्) ऊपर की ओर लगती है। **जैसे**–पूर्व, पर्व, पर्वत।

(२) व्यञ्जन सन्धि में यदि र्, व्यञ्जन के बाद है तो रेफ (र्) नीचे की ओर लगती है। **जैसे**–प्रेम, प्राची, प्रखर, व्रत।

(३) विसर्ग सन्धि के अनुसार रेफ (र्) का विसर्ग बन जाता है एवं विसर्ग का रेफ (र्) भी बन जाता है। जैसे–

स्तोत्रै-र्जगत् को **स्तोत्रैर्-जगत्**

भूतै-र्गुणै-र्भुवि को **भूतैर्-गुणैर्**

(८) इसी प्रकार भक्तामर में उच्चारण की सुविधा के लिये सन्धि स्थान में रेफ (र्) वाली मात्रा (-ॅ) को र् बनाकर लिख दिया है, क्योंकि (-ॅ) का उच्चारण र् ही होता है।

(९) प्राचीन समय की व्याकरण के नियम अनुसार रेफ (र्-ॅ) से आक्रान्त वर्ण का द्वित्व विकल्प से होता है; ऐसा माना है, **जैसे**–धर्म को धर्म्म, अर्ध को अर्द्ध, चर्म को चर्म्म, शर्म को शर्म्म, स्पर्धक को स्पर्द्धक, वर्धमान को वर्द्धमान आदि लिखते थे, किन्तु अब इस का प्रचलन नहीं है। यदि किसी टीका या सूत्र में रेफ से आक्रान्त वर्ण पढ़ने में आवे तो अशुद्ध नहीं मानना।

(१०) विसर्ग (:) का उच्चारण कण्ठ से ह् जैसा होता है। श्, ष्, स्; इन तीनों के विसर्ग भी होते हैं।

(११) सूत्रों में स्वराघात के कुछ अपवादित पद; जिन्हें बिना स्वराघात के नहीं बोला जा सकता है। **जैसे**–अवग्रह, अव्यय, अव्याबाध।

जैसे–व्यञ्जनस्यावग्रहः सूत्र को पढ़ना है, परन्तु इस सूत्र का सन्धि विग्रह-व्यञ्जनस्य-अवग्रहः है, अतः ''अव'' पद स्वराघात सहित पहले उच्चारण होता है, पुनः ''ग्रहः'' पद उच्चारण होता है।

सन्धि विग्रह को समझने से सूत्र के मूल पदों के सामान्य अर्थ समझ में आने लगते हैं एवं उन सूत्रों में कथित उनके भेद-प्रभेदों को गिनने में भी सरलता हो जाती है।

हिन्दी अनुवादक अब अनुनासिक (ँ) को, अनुस्वार (ं) लिखने लगे हैं। **जैसे**—यहाँ-वहाँ, जहाँ-कहाँ आदि को; यहां-वहां, जहां-कहां। मन्त्रों में ह्रीँ को ह्रीं लिखते हैं जो अशुद्ध है।

सूत्रों के सन्धि विग्रह में मात्र स्वर सन्धि एवं विसर्ग सन्धि के विश्लेषण का ध्यान रखा है।

सोलह-सत्रह-सौ वर्ष से इन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ बनती आ रहीं हैं। कभी-कभी एक गलती भूल से एक प्रति में हो गयी; वही गलती दूसरी प्रतिलिपियों में आ जाती है। प्रतिलिपिकार भी यदि भाषा विज्ञानी नहीं हुए तो वही गलती दूसरी प्रतिलिपि में चलती रही है। **जैसे**—बन्ध को बंध।

व्यञ्जन को व्यंजन आदि; अधिकतम गलतियाँ ङ्, ञ्, न्, ण्, म् को अनुस्वार (ं) करके या विसर्ग या ह्रस्व-दीर्घ की भूल लिपिकारों से होती गयी, जिससे मूलसूत्र एवं टीकाओं में भी भूल होती रही, अतः अब पुनः कई प्राचीन प्रकाशित मूल ग्रन्थों से मूलसूत्रों का मिलान करके एक मूलसूत्र की पाण्डुलिपि तैयार की है, इसमें मुख्यरूप से जिन सम्पादकों के मूल ग्रन्थों की सहायता ली है, वे इस प्रकार हैं—

पूज्यपादाचार्य-कृत टीका आधारित ग्रन्थ

१. सर्वार्थसिद्धि मूल टीका— सम्पादक—कल्लप्पा भरमप्पा निटवे,
कोल्हापुर; महाराष्ट्र।
प्रथमावृत्ति, शकाब्द—१८२५,
भाद्रशुक्ला पञ्चमी—सन् १९०३।
द्वितीयावृत्ति, शकाब्द—१८३९,
वैशाखशुक्ला पन्द्रस—सन् १९१७।

२. **सर्वार्थसिद्धि मूल टीका**— सम्पादक–जगरूपसहाय एड०, एटा (उ०प्र०); प्रथमावृत्ति–सन् १९२८।

३. **सर्वार्थसिद्धि मूल टीका**— सम्पादक–पं० वंशीधर, सोलापुर; तृतीय संस्करण–सन् १९३८।

४. **सर्वार्थसिद्धि मूल टीका** — सम्पादक–पं० जिनदासशास्त्री न्यायतीर्थ, सोलापुर; तृतीय संस्करण–सन् १९३९।

५. **सर्वार्थसिद्धि मूल टीका एवं हिन्दी टीका सहित** — सम्पादक, पं० फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्री; भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली; प्रथम संस्करण–सन् १९५५।

६. **सर्वार्थसिद्धि मूल एवं हिन्दी टीका सहित** — गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी; प्रथम संस्करण–सन् २००७।

भट्टाकलङ्क-कृत टीका आधारित ग्रन्थ

१. **तत्त्वार्थ राजवार्तिक मूल** — सम्पादक–पं० गजाधरलाल जैन शास्त्री; प्रथमावृत्ति, सम्पादक-सनातन जैन ग्रन्थमाला-सन् १९१५।

२. **तत्त्वार्थ राजवार्तिक मूल** — सम्पादक–पं० महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य; सम्पादक–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, नौवाँ संस्करण–सन् २०१२।

३. **तत्त्वार्थ राजवार्तिक मूल एवं हिन्दी टीका सहित**— गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी; द्वितीय संस्करण–सन् २००७।

विद्यानन्दस्वामि-कृत टीका आधारित ग्रन्थ

१. **श्लोकवार्तिकालङ्कारमूल** — सम्पादक–पं०मनोहरलाल-न्यायशास्त्री; प्रकाशक–श्रीगांधीनाथारङ्ग–जैनग्रन्थमाला। संस्करण प्रथम–सन् १९१८।

२. **श्लोकवार्तिकालङ्कार मूल एवं हिन्दी टीका सहित**— सम्पादक–पं० माणिकचन्द जी कौन्देय; प्रकाशक–कुन्थुसागर ग्रन्थमाला; सोलापुर (महाराष्ट्र) द्वितीय संस्करण–सन् २००४।

३. **श्लोकवार्तिकालङ्कार मूल एवं हिन्दी टीका सहित**— गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी; द्वितीय संस्करण–सन् २००७।

श्रुतसागरसूरि-कृत टीका आधारित ग्रन्थ

१. **तत्त्वार्थवृत्ति मूल एवं हिन्दी टीका सहित**—सम्पादक, पं० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य; प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली; द्वितीय संस्करण–सन् १९९९।

२. **तत्त्वार्थवृत्ति मूल एवं हिन्दी टीका सहित**—गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी; प्रथम संस्करण–सन् १९९२।

भास्करनन्दि आचार्य-कृत टीका आधारित ग्रन्थ

१. **तत्त्वार्थवृत्ति मूल** — सम्पादक–पं०ए० शान्तराज शास्त्री, मैसूर, प्रथम संस्करण–सन् १९४४।

२. **तत्त्वार्थवृत्ति मूल एवं हिन्दी अनुवाद** — आर्यिका जिनमती माता जी; प्रथम संस्करण–सन् १९९३।

भावों को भाषा के वस्त्र पहनाये जाते हैं, अतः भाषा बदल सकती है, लिपि बदल सकती है, अक्षरों के आकार-प्रकार बदल सकते हैं, किन्तु सिद्धान्त नहीं बदलते।

इस हिन्दी टीका में वाक्य विन्यास के लिए, अर्द्ध विराम (;); अल्प विराम (,); सेमी डेस (–); डेस (—) लगाकर शब्दों के अर्थ को स्पष्ट किया है, क्योंकि इन संकेतों (चिह्नों) के बिना; अर्थ का अनर्थ लग जाता है। **जैसे**–रोको; मत जाने दो। रोको मत; जाने दो। इस प्रकार कहें कि पल्य गड्ढे को कहते हैं। इससे अर्थ ध्वनित हो रहा है कि आगे पल्य गड्ढे के बारे में कहेंगे या बताया जायेगा, किन्तु इसका वाक्य विन्यास पल्य; गड्ढे को कहते हैं अर्थात् पल्य के बाद अर्द्ध विराम लगाने से अर्थ होता है कि पल्य; गड्ढे का नाम है। इसी प्रकार कुछ अर्द्ध विराम (;) के प्रयोगों को भी समझ लें। **जैसे**–हाँ; हमें ऐसा करना चाहिए। नहीं; हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार वाक्यों की समरसता के लिए—लेकिन, किन्तु, परन्तु, इसलिए; इन सबके पहले (,) अल्प विराम का प्रयोग किया जाता है।

जहाँ हम, तुम आदि से भेद हो; वहाँ अल्प विराम लगता है। **जैसे**–तुम यहीं रहो, हम जाते हैं।

और, फिर, पुनः, तो, जो, जब, तब, तथा, वा, अथवा, अन्यथा, यद्यपि, तथापि, या, एवं, अर्थात्; इनके आगे अर्द्ध विराम (;); अल्प विराम (,); पूर्ण विराम (।) आदि नहीं लगते हैं, ये पद अव्यय की तरह प्रयोग में लाये जाते हैं। **जैसे**–राम और श्याम जा रहे थे। जाओ फिर लौट आना। जब हम आये थे तब बादल नहीं थे। जब ऐसा हुआ था तब हम नहीं थे।

संख्यात्मक भेद-प्रभेदों के साथ अर्द्ध विराम का प्रयोग होता है, जिससे संख्या से वाक्यों का सम्बन्ध जुड़ा रहता है। **जैसे**–सम्यग्दर्शन के दो भेद हैं—**पहला;** निसर्गज, **दूसरा;** अधिगमज। **जैसे**–(१) जीव; (२) अजीव; (३) आस्रव; (४) बन्ध; (५) संवर; (६) निर्जरा; (७) मोक्ष; इस प्रकार ये सात तत्त्व कहे हैं।

जिस प्रकार इन सब में अर्द्धविराम (;) का प्रयोग किया है, उसी प्रकार अन्य प्रसङ्गों में लगा लेना चाहिए।

एक पद को दो बार दुहराने में अथवा उनके समकक्ष युगलरूप होने से बीच में हाईफन (-) लगते हैं। **जैसे**–एक-एक करके आओ। आगे-आगे आओ। पीछे-पीछे आओ। आगे-पीछे आओ। एक-दूसरे से मिलकर रहो। अपने-अपने कार्य करो। कहीं-कहीं; संख्यात्मक भेद दिखलाने के लिए हाईफन लगाकर लिख देते हैं। **जैसे**–बार-२। पास-२। आगे-२।

समकक्ष या युगलरूप पदों में भी हाईफन (-) का प्रयोग करना चाहिए। **जैसे**–माता-पिता। पति-पत्नी। भाई-बहिन। जीजा-जीजी। साले-बहनोई। समधी-समधिन। अतिथि-अतिथि। मन्त्री-मन्त्री इत्यादि। **मूलसूत्रों में या श्लोकों में जहाँ स्वर और व्यञ्जन वाले सन्धि विग्रह पद होते हैं, वहाँ भी हाईफन (-) लगाकर उसे उच्चारण करने योग्य बनाया है। जैसे–स्वर, व्यञ्जन सन्धि विग्रह में; तत्त्व-अर्थ श्रद्धानं सम्यक्-दर्शनम्। जैसे–तन्निसर्गा-दधिगमाद्-वा। जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षाः तत्त्वम्। इसी तरह मूल सूत्रों के उच्चारण में सन्धि विग्रह के स्थान पर हाईफन (-) चिह्न का प्रयोग किया है। विसर्ग सन्धि में रेफ एवं तीनों श्-ष्-स् को विसर्ग बना दिये हैं।**

इस संस्करण में मूल सूत्रों में से हाईफन (-) हटा लिये हैं, जिससे मूल सूत्र सुरक्षित रहें।

फुल डैश (—) के प्रयोग का मतलब; "अर्थात्" आगे की सूचना**!** आगे का सूत्र कहते हैं—

उन्होंने इस ग्रन्थ में ऐसा कहा है—

आगे ऐसा कहते हैं कि—

पूर्ण विराम (।) जहाँ वाक्य; भेद-उपभेद के साथ पूर्ण होता हो वहाँ पूर्ण विराम (।) लगता है।

दृष्टान्त के पूर्ण होने पर पूर्ण विराम करके; दृष्टान्त प्रारम्भ करना चाहिए अथवा दृष्टान्त के पूर्ण करने पर पूर्ण विराम करके दृष्टान्त प्रारम्भ करें। **जैसे**–जिस प्रकार यह है। उसी प्रकार यह है।

पैराग्राफ–विषयों को छोटे-छोटे विभाग में विभाजित करने से पढ़ने में सरलता होती है एवं उसके अर्थ भी बोधगम्य हो जाते हैं, अतः पैराग्राफ में विषयों को विभाजित अवश्य करना चाहिए।

प्रश्न वाचक (?) चिह्न; क्यों, कैसे, कब, किसलिए, कहाँ, किधर; इन पदों के साथ प्रश्न वाचक (?) चिह्न लगता है। **जैसे**–ऐसा क्यों होता है ? ऐसे कैसे हुआ ?

सम्बोधन (!) चिह्न; हे, हो, भो, ओ, अरे आदि पदों के साथ लगता है। **जैसे**–हे राम !, हे स्वामिन् !, अरे ! यहाँ आओ।

लिये-लिए, गये-गए, जायें-जावें आदि क्रियात्मक पद हैं, यथासम्भव दोनों चल सकते हैं, किन्तु लिपि की एकात्मता बनी रहे, अतः जो क्रिया पद एक बार में लिखा हो उसी का प्रयोग आगे करते रहें। **जैसे**–इसलि**ए** लिखें तो हर जगह यही लिखें। इसलि**ये** लिखें तो हर जगह यही लिखें।

है और **हैं** के प्रयोग में भी भूल होती है। **जैसे**–जाते है, जाता हैं, परन्तु जहाँ पर एक वचनान्त हो वहाँ **"है"** लिखा जाता है। **जैसे**–वह जाता है, वह आता है, खाता है, पीता है, वह है, यह है आदि। जहाँ बहुवचनान्त या सम्मान रूप पद हो वहाँ **"हैं"** लिखा जाता है। **जैसे**–आप जाते हैं, वे आते हैं, खाते हैं, पीते हैं, कहते हैं, वे हैं, ये हैं आदि।

आज-कल बड़े शब्दों को संक्षिप्त में लिखने एवं बोलने की परम्परा प्रारम्भ हो गई है। **जैसे**–भारतीय जनता पार्टी को भाजपा या बी.जे.पी., उत्तरप्रदेश को उ०प्र०, डॉक्टर प्रकाशचन्द्र को डॉ० पी.सी. लिख देते हैं या बोल देते हैं।

इस सन्दर्भ में मूल बात यह है कि शून्य (०) एवं डॉट (.) का चिह्न लिखते समय, यदि हम बी.जे. पी. को बी०जे०पी०, उ०प्र० को उ.प्र., डॉ० पी.सी.को डॉ.पी०सी० लिखते हैं तो अशुद्ध है; कारण कि शून्य और डॉट लिखने और पढ़ने के; फुलफॉर्म एवं शॉर्टफॉर्म के चिह्न या संकेत हैं।

जैसे–उत्तरप्रदेश को हम शॉर्टफार्म उ०प्र० लिखते हैं तब हम उसे पढ़ते समय फुलफॉर्म उत्तरप्रदेश ही पढ़ते हैं।

जैसे–डॉक्टर को शॉर्टफॉर्म डॉ० लिखते हैं फिर भी हम उसे पढ़ने में फुलफॉर्म डॉक्टर ही पढ़ते हैं, अतः लिखते और पढ़ते समय शॉर्टफॉर्म का चिह्न (.) डॉट कहाँ लगता है एवं शॉर्टफॉर्म में फुलफॉर्म का चिह्न (०) शून्य कहाँ लगता है, इन संकेतों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए।

भावों को भाषा के वस्त्र पहनाये जाते हैं। व्याकरण; भाषा की शृङ्गारदानी है।

इन सब नियमों को पढ़ने के बाद; तत्त्वार्थसूत्र को पढ़ने-सीखने की कोशिश करें, शायद आप तत्त्वार्थसूत्र के रहस्य को समझ सकें।

जैसे–आप किसी दावत में जीमने जाते हैं। दावत में तरह-तरह के व्यञ्जन-पकवान रखे होते हैं, किन्तु आप; अपनी अनुकूलता–क्षमता देखकर ही भोजन ग्रहण करते हैं; बाकी के विकल्प छोड़ देते हैं।

उसी प्रकार इस **"अनुत्तर जिज्ञासा"** टीका को आप; अपनी रुचि के अनुसार पढ़ें; बाकी के विकल्प छोड़ दें।

आचार्य भगवन्तों ने तीन प्रकार के जिज्ञासु शिष्य कहे हैं—(१) संक्षेप रुचि; (२) मध्यम रुचि; (३) विस्तार रुचि। हमने तीनों प्रकार के जिज्ञासु शिष्यों को दृष्टि में रखकर इस **"अनुत्तर जिज्ञासा"** टीका का सम्पादन किया है।

(१) संक्षेप रुचि जिज्ञासु शिष्य के लिए—उसे मात्र मूलसूत्र की जिज्ञासा, मूलसूत्र, मूलसूत्र का उच्चारण एवं सन्धि विग्रह; कम से कम तीन-तीन बार पढ़ना चाहिए; बाकी सूत्रार्थ, लब्धार्थ, विशेषार्थ छोड़ देना चाहिए। सूत्र उच्चारण; अल्पविराम (कॉमा) को ध्यान में रखकर, धीमी गति के समाचार जैसा पढ़ें।

(२) मध्यम रुचि शिष्य के लिए—उसे पूर्वोक्त मूलसूत्र की जिज्ञासा, मूलसूत्र, मूलसूत्र उच्चारण, सन्धि विग्रह के साथ ही सूत्रार्थ एवं लब्धार्थ तक तीन-तीन बार पढ़ना चाहिए; बाकी विशेषार्थ छोड़ देना चाहिए।

(३) विस्तार रुचि शिष्य के लिए—पूर्वोक्त मूलसूत्र की जिज्ञासा से लेकर विशेषार्थ-विशेष आदि पूरा-पूरा पढ़ना चाहिए। इस तरह पढ़ने से तत्त्वार्थसूत्र सरलता से समझ में आ सकता है।

हमने जो भी प्रमाण; आचार्य प्रणीत आगम से लिए हैं, उनके मूल प्रमाण मूल ग्रन्थ में ही हैं, उनके अर्थ यहाँ यथास्थान दिए हैं, क्योंकि जलते हुए दीपक को; जलते हुए दीपक का प्रमाण नहीं चाहिए। एक दर्पण को देखने के लिए; दूसरे दर्पण की जरूरत नहीं है; श्रद्धा-समर्पण की जरूरत है।

विशेष—व्यक्तिगत स्वाध्याय में, शिविरों में, वाचनाओं में, संघों में सीखने-सिखाने की सरलतम विधि है। यदि इस विधि से तत्त्वार्थसूत्र पढ़ा जाए तो अवश्य ही हम तत्त्व निर्णय तक पहुँच सकते हैं।

सन् १९९८ की बात है, श्रीसम्मेदशिखर जी में संघ का वर्षायोग हो रहा था, एक दिन अचानक एक विद्वान्-पण्डित; आरा-बिहार से आचार्यश्री भरतसागर जी एवं आर्यिका स्याद्वादमती माता जी के दर्शनार्थ आए। आचार्यश्री ने उनका परिचय डॉ० विश्वनाथ चौधरी के रूप में हमसे कराया; प्राथमिक परिचय से इतना लगा कि आप सत्य के प्रति जिज्ञासु हैं—तत्त्व की खोज में हैं।

इसी वर्ष आपको आचार्यश्री के आदेश से गिरिडीह-बिहार में दशलक्षण पर्व पर प्रवचन करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे आपको तत्त्वार्थसूत्र आदि की मौलिकता का आभास हुआ। यदि आपको कोई जिज्ञासा होती तो आप वहाँ से आकर हमसे पूछ लेते।

सन् १९९९ का वर्षायोग हजारीबाग में हुआ, अच्छी प्रभावना रही। वर्षायोग बाद; झूमरीतलैया-कोडरमा की ओर विहार हुआ। झूमरीतलैया में लगभग पन्द्रह दिन का प्रवास रहा, इसी प्रवास में डॉ॰विश्वनाथ चौधरी अपनी धर्म पत्नी डॉ॰ मंजुबाला चौधरी एवं लघु बालिका खुशबू के साथ धर्मलाभ लेने आ पहुँचे।

चौधरी जी भूमिहार ब्राह्मण हैं, किन्तु आप पावापुरी-सिद्धक्षेत्र में स्थापित; वर्द्धमान-महावीर महाविद्यालय में प्राकृत विभागाध्यक्ष रहे, तदनन्तर हरप्रसाददास जैन महाविद्यालय, आरा; स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैन शास्त्र विभागाध्यक्ष, वीर कु॰ सिंह विश्वविद्यालय, आरा-भोजपुर, बिहार में शिक्षक हैं एवं डॉ॰ श्रीमती मंजुबाला प्राध्यापक प्राकृत; विभाग प्राकृत एवं जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली-बिहार में हैं। आप दोनों जिज्ञासु भव्यात्माओं को जैन धर्म की प्रारम्भिक जानकारी तो है ही, किन्तु विशेष जिज्ञासाओं के समाधान से उनकी आस्था जैन तत्त्वों के प्रति अधिक स्थिर हो गयी।

यहीं से योग बना तत्त्वार्थसूत्र पर कुछ लिखने का। डॉ॰ चौधरी ने लगभग तीन अध्यायों का अध्ययन जिज्ञासा–समाधान के रूप में समझ कर उसे लिपिबद्ध किया।

इसी बीच संघ का लम्बा विहार एवं स्थान की दूरियाँ बढ़ती चली गयी फिर भी डॉ॰ चौधरी हर वर्ष सपरिवार धार्मिक कार्यों में आने लगे, किन्तु आगे लिखने-पढ़ने का योग नहीं बना।

सन् २००१ का वर्षायोग सोनीपत-हरियाणा में हुआ। इस वर्षायोग में संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान् एवं संस्कृत गर्ल्स कॉलेज के शिक्षक; डॉ॰ सुभाषचन्द सचदेवा से परिचय हुआ। आप हिन्दुधर्म के

उच्चकोटि के विद्वान् होते हुए भी; श्वेताम्बर साहित्य से पी. एच. डी. की है। उनकी विशेष जिज्ञासा; दिगम्बर जैन आगम साहित्य के ऊपर डी. लिट्. करने की है, अतः उन्होंने डी. लिट्. विषय के योग्य सामग्री का संकलन कर भी लिया है, किन्तु सहयोग नहीं बन पाया फिर भी आप धर्म की जिज्ञासाओं के प्रति पुरुषार्थरत हैं। आप प्रतिवर्ष संघ में यथासमय आते रहते हैं एवं गूढ़ शङ्काओं के समाधान करते रहते हैं। संघसेवक पण्डित महेन्द्रकुमार जी **"हाथीबाबा"** (इटावा) तत्त्व जिज्ञासु हैं, उनसे हमें अनुभव मिला। डॉ० डी.सी.जैन, ग्रीनपार्क नई दिल्ली; तत्त्वों की वैज्ञानिक व्याख्या पर जोर देते हैं। अमित जैन **"जिज्ञासु"** मैनपुरी (उ०प्र०) ने संघ में रहकर तीन वर्षों तक अध्ययन किया। पं०ब्र० धर्मचन्द्र शास्त्री; अष्टापद तीर्थ (हरि०) साहित्य उपलब्ध कराने में मदद करते हैं। चन्द्रा कापी हाऊस आगरा; जिन्होंने शास्त्र-साहित्य प्रकाशन में तन-मन धन का सहयोग दिया, सभी अनन्त आशीष के पात्र हैं।

समय बीतता गया, सन् २००६ का वर्षायोग श्रवणबेलगोला में हुआ। **कर्मयोगी चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी** के सान्निध्य में सर्वार्थसिद्धि एवं समयसार की वाचना का आयोजन रखा गया। सर्वार्थसिद्धि के कई प्रसङ्गों को स्वामी जी ने खोला और हमने भी अपना चिन्तन प्रसङ्गानुसार स्वामी जी के सामने प्रस्तुत किया, जिससे स्वामी जी को लगा कि मुनिश्री के पास कुछ चिन्तन है, जिज्ञासा है। चारुकीर्ति जी ने हमें प्रेरणा दी और कहा कि महाराजश्री ! आज तक हमने; असंयमी पण्डित-विद्वानों की हिन्दी टीकाओं को पढ़ा है, आप जैसे मुनिराजों को अनुभव पूर्ण टीकायें लिखना चाहिए। हमने अपनी असमर्थता प्रकट की, किन्तु जब भी प्रसङ्ग मिलता वे पुनः हिन्दी टीका लिखने की प्रेरणा देते रहते।

वर्षायोग के बाद श्रवणबेलगोला से तामिलनाडु की यात्रा, पुनः श्रवणबेलगोला होते हुए धर्मस्थल महामस्तकाभिषेक के बाद दक्षिण जैन काशी फलटण-महाराष्ट्र में सन् २००७ का वर्षायोग हुआ।

फलटण के आदिनाथ जिनालय में एक दिन शास्त्र भण्डार सम्भाल रहे थे कि अमृतचन्द्राचार्य विरचित तत्त्वार्थसार की एक जीर्णशीर्ण प्राचीन प्रति प्राप्त हुयी। हमने उसे आद्योपान्त पढ़ा और संशोधित करके कम्प्यूटर द्वारा प्रतिलिपि तैयार करा ली।

सन् १९९६ से संघ से जुड़े वास्ट जैन फाउण्डेशन, कानपुर (उ०प्र०) के पदाधिकारी दर्शनार्थ फलटण आए, जब उन्होंने उस पाण्डुलिपि को देखा तब कहने लगे कि इस टीका को तो भारतीय ज्ञानपीठ; दिल्ली से प्रकाशित कराना चाहिए। हमने इसके प्रकाशन की जिम्मेदारी वास्ट जैन फाउण्डेशन, कानपुर वालों पर डाल दी। उन्होंने इसके प्रकाशन की व्यवस्था की एवं सन् २०१०; हस्तिनापुर में गणिनी प्रमुख आर्यिका ज्ञानमती माता जी के ससंघ सान्निध्य में प्रभावना पूर्ण विमोचन हुआ। अभी तक तत्त्वार्थसार के तीन-चार संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुके हैं।

तत्त्वार्थसार प्रकाशन के बाद पुनः सर्वार्थसिद्धि पर काम करने का विचार किया, किन्तु विहार एवं शारीरिक प्रतिकूलताओं के कारण अपने साहित्य लेखन-प्रकाशन पर गतिरोध हो गया, किन्तु इसी बीच कुछ ब्र० भाइयों के साथ समन्तभद्राचार्य के बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र; प्रभाचन्द्राचार्य की टीका सहित प्रूफरीडिंग करने का सौभाग्य मिला, जिससे संस्कृत एवं हिन्दी के पाठ भेदों एवं अर्थों को समझने का अवसर मिला।

सन् २०१३ में टूण्डला चौराहा-फिरोजाबाद के श्रीपार्श्वनाथ जिनालय में रुके हुए थे, संघ की अध्ययन सामग्री में डॉ० चौधरी द्वारा लिखित पुरानी फाइल जिज्ञासा-समाधान के पृष्ठ मिल गए और हमने संकल्पित होकर माघ-शुक्ला पञ्चमी से **"अनुत्तर जिज्ञासा"** नाम से टीका लिखनी शुरू की; जो छह माह दो दिन में श्रावण-शुक्ला सप्तमी के दिन पूर्ण हुयी।

इस **"अनुत्तर जिज्ञासा"** के चिन्तन पूर्ण प्रसङ्गों को जिनने भी सुना; उन सभी ने इसके प्रकाशन में स्वेच्छ से, निर्नाम-उदार दानदाता बनकर सहयोग दिया।

अकारण बन्धु; संघसेवक आलोककुमार जैन (फिरोजाबाद), मुकेश जैन, राजु जैन–सोनीपत (हरि॰), मनोज कुमार एवं उनकी धर्म पत्नी श्रीमती दीप्ति जैन–लखनऊ (उ॰प्र॰), अध्ययन योग्य सामग्री जुटा देते हैं। संघस्थ सभी साधुवृन्द-मुनि, त्यागीव्रती, विशेषरूप से बाल ब्र॰ सुनील भैया जी, जगत कल्याणी जिनवाणी-सरस्वती माँ का सहयोग रहा।

इस ग्रन्थ के लेखन में अनेकानेक अनुभव देने वाले अनेक ग्रन्थों के प्रमाण एवं चिन्तन; इसमें समाहित किए गए हैं, हम उनके रचयिताओं एवं लेखकों का अन्तरङ्ग से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

इसकी कम्पोजिंग, वर्द्धमान कम्प्यूटर्स, फिरोजाबाद (उ॰प्र॰) के माध्यम से हरेन्द्रकुमार शर्मा उर्फ शीटू भरतेशपुरम-शिकोहाबाद द्वारा की गई है।

इसका प्रकाशन श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान, श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ॰प्र॰) द्वारा किया जा रहा है।

इस ग्रन्थ के दानदाता, प्रकाशक एवं मुद्रक सभी अनन्त आशीर्वाद के पात्र हैं।

३-१०-२०१४ *ॐ नमः*

प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ संस्करण में भी सिद्धान्त एवं व्याकरण सम्बन्धी कुछ भूलें होने से अशुद्धियाँ रह गई थीं, अतः इस संस्करण को कुछ ब्रह्मचारी भाइयों के सहयोग से ब्र॰ अशोक जैन ''श्रीमद्-राजचन्द्र'' आश्रम–आगास, डिस्केन कम्प्यूटर्स, आणंद–गुजरात ने सम्पादकीय विधा में व्यवस्थित सेटिंग की है, वे धन्यवाद के पात्र हैं ''को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे''।

प्रस्तावना

आज तक हम सबने क्या-क्या नहीं सुना है ! राजा-रानियों की कहानियाँ सुनी हैं, सेठ-सेठानियों की कहानियाँ सुनी हैं, पशु-पक्षियों की कहानियाँ सुनी हैं और भी न जाने कितनी, किन-किन की कहानियों को सुना है ? तभी तो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने अपने आध्यात्मिक ग्रन्थ 'समयसार' में कहा है—

सुदपरिचिदाणुभूया सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा ।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥४॥

इस समस्त जीवलोक को कामभोग विषयक बन्ध की कथा, एकत्व के विरुद्ध होने से आत्मा का अत्यन्त अहित करने वाली है, ऐसा जानते हुए भी इस जीव ने उस काम (स्पर्शन-रसना सम्बन्धी) तथा भोग (घ्राण-चक्षु-कर्ण सम्बन्धी) बन्ध की कुकथा को एवं चारों संज्ञाओं से संस्कारित चारों विकथाओं को अनादिकाल से एक बार नहीं–अनन्तबार बड़ी रुचि एवं लगन से सुना–श्रद्धान किया । इन्हीं विषयों की जिज्ञासा होने से इनका अनन्तबार परिचय–ज्ञान लिया । जैसा ज्ञान वैसा ही चारित्र के द्वारा अनुभव करने को ये जीव अनन्तबार पुरुषार्थ करने में लगे रहते हैं।

इसी कारण से समस्त संसारी प्राणी संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पञ्च परावर्तनरूप अनन्त संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं।

मोहरूपी महाबलवान् पिशाच; जो इस समस्त लोक को अपने एक छत्र राज्य से अपने वश करके बैल की भाँति जोतकर कर्मरूपी भार को जीव के द्वारा जबर्दस्ती वहन करवाता है।

अत्यन्त वेगवान् तृष्णारूपी रोग की दाह से सन्तप्त होने पर जिसके अन्तरङ्ग में क्षोभ और पीड़ा है ऐसा मृग; मृगमरीचिका के वशीभूत होकर मरुस्थल में भटकता है । उसी प्रकार यह जीव; मृगतृष्णा के समान श्रान्तसन्तप्त होकर पञ्चेन्द्रिय-विषयों की ओर तीव्रगति से दौड़ रहा है।

यदि कथञ्चित् कोई जीव; किसी कारण से संसार के विषयभोगों की कुकथा से चारुदत्त के समान अजान-उदासीन भी होता है तो अन्य दूसरे विषयासक्त जीव; उसे पञ्चेन्द्रिय-विषयों की शिक्षा देकर अपना आचार्यत्व प्रकट करते हैं, एक-दूसरे को सिखाते हैं, समझाते हैं, प्रेरणा देते हैं, इसलिए काम-भोग सम्बन्धी बन्ध की कथा सभी भोगाभिलाषियों के लिए अत्यन्त सुलभ है।

आज के भौतिकता के समय में भी प्रत्यक्ष-अनुभव में आ रहा है कि काम-विकारों को बढ़ाने वाले भौतिक सुख-साधन घर-घर में कितने सुलभ हैं। सुबह से अखबार, टी.वी., नेट, मैग्जीन आदि से जीवनचर्या प्रारम्भ होकर रात्रि में विश्राम तक इन्हीं का अवलम्बन लिए हुए हैं।

अपने ही निर्मल भेद-विज्ञानरूपी ज्योति से स्पष्ट दिखाई देने वाली एकत्व-विभक्त आत्मा यद्यपि सदा अन्तरङ्ग में प्रकटरूप से प्रकाशमान है तो भी वह कषायचक्र के साथ एकरूप किए जाने से अपने सच्चे स्वरूप को पहचानता नहीं है और जो आत्मा के सच्चे स्वरूप को जानते हैं, उनकी सङ्गति-सेवा नहीं करते। यह तो लोकप्रसिद्ध है कि डॉक्टर, मास्टर, वकील, इंजीनियर, व्यापारी, जौहरी आदि बनना हो तो यथाक्रम से योग्य पदवालों के नीचे रहकर सङ्गति-अभ्यास करना होता है।

उसी प्रकार यदि अध्यात्म को समझना है तो जिन्होंने अध्यात्म जिया है, पिया है, जीवन में उतारा है, उनकी सङ्गति करने से उस आत्मतत्त्व के गूढ़तम रहस्य समझ में आ सकते हैं अन्यथा उस एकत्व-विभक्त आत्मा की कथा को; न हमने कभी सुना-श्रद्धान किया, न कभी परिचय-ज्ञान किया, न कभी अनुभवरूप आचरण किया, क्योंकि जब एकत्व-विभक्त आत्मा की सुकथा सुनाने-बताने वाले सुलभ होते हैं तब उनसे जानने-सुनने वाले दुर्लभ होते हैं और जब जानने-सुनने वाले सुलभ होते हैं तब बताने-सुनाने वाले दुर्लभ होते हैं, अतः आत्मा की एकत्व-विभक्त सुकथा अत्यन्त दुर्लभ है।[1]

---

१. स०सा०गा० ४।

इस आत्मा का अस्तित्व कब से है ? कैसा है ? कहाँ है ? कब तक है ? इसके अस्तित्व का विकासक्रम क्या है ? इत्यादिक प्रश्न मन में जन्म अवश्य लेते हैं—

कौन थे ? क्या हो गये ? और क्या होंगे अभी ?
आओ यहाँ सब बैठकर इस बात को सोचें सभी।

इस जीव का अनादि निवासस्थान निगोद है। निगोद के दो भेद हैं— नित्यनिगोद और इतरनिगोद। जो जीव; नित्यनिगोद से निकलकर संसार की त्रसादि पर्यायों को पञ्च-परावर्तनरूप काल से व्यतीत करके पुनः निगोद में जाता है, उसे इतरनिगोद कहते हैं।[२]

नित्यनिगोद सातवें नरक के नीचे कलकल नामक पृथ्वी में है, जहाँ उनका निवासस्थान है। अनन्त स्कन्धों के समूह में से **'एक स्कन्ध'** में असंख्यात लोकप्रमाण **'अण्डर'** होते हैं। उनमें से **'एक अण्डर'** में असंख्यात लोकप्रमाण **'आवास'** होते हैं। उनमें से **'एक आवास'** में असंख्यात लोकप्रमाण **'पुलवि'** होती हैं। उनमें से **'एक पुलवि'** में असंख्यात लोकप्रमाण **'निगोद शरीर'** होते हैं। उनमें से **'एक निगोद शरीर'** में **'अनन्तानन्त निगोद जीवों'** का अवस्थान पाया जाता है। वहाँ पर एक निगोद शरीर के अनन्त जीवों का सामूहिकरूप से एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण होता है।[३]

इन्हीं नित्यनिगोदिया जीवों में से छह महीने आठ समय में छह-सौ आठ जीव निकलकर संसार की व्यवहार राशि में आते हैं एवं इतने ही समय में छह-सौ आठ जीव संसार की व्यवहार राशि से निकलकर मोक्ष चले जाते हैं, जिससे संसारी जीवों की व्यवहार राशि बराबर बनी रहती है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि यह जीव; नित्यनिगोद से निकलकर व्यवहार राशि में कैसे आता है ?

---

२. ध०पु० १४, प्रस्ता०, पृ० १०। ३. ध०पु० १४, पृ० ८६।

इस प्रश्न का एक उत्तर हमेशा विद्वानों द्वारा दिया जाता रहा है। **जैसे**–कोई एक भड़भूँजा (चना फोड़ने वाला) जब भाड़ भूँजता है तब कोई विरला चने का दाना भाड़ से उचटकर भाड़ के बाहर आ जाता है। वैसे ही नित्यनिगोद से जीव निकलकर व्यवहार राशि में आ जाता है।

इस दृष्टान्त में भाड़ से उचटकर बाहर निकलने वाले चने की प्रवृत्ति का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है कि यह चने का दाना भाड़ से उचटकर बाहर कैसे आया ? कौन-सा निमित्त है ? कौन-सी पात्रता उस चने को भाड़ से बाहर निकालने में सहायक होती है ?

जब चनों को भाड़ में भूँजते हैं तब उसके पहले उन चनों को पानी मे भिगोकर फुलाते हैं फिर भाड़ में भूँजते हैं। भाड़ में भूँजते समय भट्टी की गर्मी से गीले चनों के दानों में वाष्प का निर्माण होता है। जिस चने के दाने में एक निश्चित अनुपात में वाष्प बन जाती है, वह वाष्प विस्फोट करती है। यदि वह चने का दाना भाड़ में नीचे की तरफ हो तो वहीं फूटकर नीचे ही रह जाता है, लेकिन भाड़ की ऊपर की सतह पर हो तब विस्फोट के कारण भाड़ से उचटकर बाहर निकल आता है।

ठीक इसी प्रकार से नित्यनिगोदिया जीव; निगोद से निकलकर व्यवहार राशि में आते हैं। इस प्रक्रिया में नित्यनिगोद से निकलने का कारण **जघन्य कापोत लेश्या के आठ मध्यम अंश के परिणाम कहे हैं,** क्योंकि नित्यनिगोदिया जीवों के जघन्य कापोत लेश्या होती है और उसमें भी उस लेश्या के असंख्यात परिणाम होते हैं।[४]

"कषायोदयरञ्जिता योगप्रवृत्तिः लेश्याः"।[५] **जैसे**–गर्मी और पानी के संयोग से वाष्प बनती है। वैसे ही कषाय से प्रभावित योगों में जो परिवर्तन आता है, उसे लेश्या कहा जाता है।

जिस प्रकार से भाड़ के चने को भाड़ से बाहर उचटाने में वाष्प कारण है, उसी प्रकार जघन्य कापोत लेश्या के महत्त्वपूर्ण आठ

४.ध०पु० २/१, १/४२२/६। ५.सर्वा०सि०, वृ० २६५।

मध्यम अंश इस जीव को नित्यनिगोद से बाहर निकालने तथा व्यवहार राशि में लाने के लिए कारण हैं, अतः इस जीव का नित्यनिगोद से व्यवहार राशि में आना अत्यन्त कठिन है।

एक निगोदशरीर में सिद्धों से अनन्तगुणे जीव हैं। इस प्रकार स्थावर जीवों से सम्पूर्ण लोक भरा हुआ है, अतः इस लोक में त्रस पर्याय का प्राप्त होना इतना दुर्लभ है, जितना कि बालुका के समुद्र में पड़ी हुई वज्रसिकता (हीरा) की कणिका का प्राप्त होना दुर्लभ है। उसमें भी विकलेन्द्रिय जीवों की बहुलता होने के कारण गुणों में जिस प्रकार कृतज्ञता का गुण प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है, उसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय पर्याय का प्राप्त होना अति कठिन है। उसमें भी पशु, मृग, पक्षी और सरीसृप तिर्यञ्चों की बहुलता होती है, इसलिए जिस प्रकार चौपथ पर रत्नराशि का प्राप्त होना अतिकठिन है, उसी प्रकार मनुष्य पर्याय का प्राप्त होना भी अतिकठिन है।

मनुष्य पर्याय के मिलने के बाद उसके च्युत हो जाने पर पुनः उसकी उत्पत्ति होना उतना ही कठिन है, जितना कि जले हुए वृक्ष के पुद्गलों का पुनः उस वृक्ष पर्यायरूप से उत्पन्न होना कठिन है। कदाचित् पुनः इसकी प्राप्ति हो जावे तो देश, कुल, इन्द्रियसम्पत् और नीरोगता इनका प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। इन सबके मिल जाने पर भी यदि समीचीन धर्म की प्राप्ति न हो तो जिस प्रकार दृष्टि के बिना मुख व्यर्थ होता है, उसी प्रकार मनुष्य-जन्म का प्राप्त होना व्यर्थ है। इस प्रकार अतिकठिनता से प्राप्त होने योग्य उस धर्म को प्राप्त कर विषय-सुख में रमना भस्म के लिए चन्दन को जलाने के समान निष्फल है। कदाचित् विषयसुख से विरक्त हुआ तो भी इसके लिए तप की भावना, धर्म की प्रभावना और सुखपूर्वक मरणरूप समाधि का प्राप्त होना अति दुर्लभ है। इसके होने पर ही बोधिलाभ सफल है, ऐसा विचार करना बोधिदुर्लभ भावना है। इस प्रकार का विचार करने वाले जीव को बोधि प्राप्त करने के बाद कभी प्रमाद नहीं होता है।[६]

---

६. सर्वा॰सि॰, वृ॰ ८०९।

जिस प्रकार नित्यनिगोद से निकलकर यह जीव अत्यन्त कठिनता से त्रसादि पर्यायों को प्राप्त कर मनुष्य पर्याय की पूर्णता को प्राप्त करता है, उसी प्रकार हमारा तो सोचना यह है कि उससे भी अधिक कठिन इन सबकी प्राप्ति की दुर्लभता का श्रद्धान-ज्ञान का होना है कि हमें यह मनुष्य पर्याय कितनी कठिनता, दुर्लभता से मिली है, इसलिए इस भावना का नाम बोधिदुर्लभ भावना रखा गया है। विश्व के हर मजहब, संस्कृति, धर्म-सम्प्रदाय में इस मनुष्य पर्याय की महिमा का महत्त्व बताया गया है। मानव-देह को अमूल्य-रत्न की उपाधि से मण्डित किया गया है—

"नर तन रतन अमोल इसे पानी में मत डालो।"
"बड़े भाग मानुस तन पावा, सुर दुर्लभ सब ग्रन्थनि गावा।"

यहाँ तक कि अध्यात्म की चर्चा करने वाले भी इस मनुष्य देह की महिमा का वर्णन करते हैं—

"बहु पुण्य पुञ्ज प्रसङ्ग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला॥[७]"

ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानने वाले ईश्वरवादी भी मनुष्य को ईश्वर की अमूल्य-अनुपम कृति मानते हैं, अतः यह तो सर्वसम्मत, सत्य एवं निर्विवाद सिद्ध है कि मनुष्य-जीवन अत्यन्त दुर्लभ एवं सर्वश्रेष्ठ है।

क्या हम सबने कभी इस बात पर दृष्टिपात किया कि आखिर चौरासी लाख योनियों में से मनुष्य योनि का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ क्यों है ?

(१) कोई कहता है कि मनुष्य जीवन में धन-वैभव, वस्त्रालङ्कार, भोग-उपभोग आदि के द्वारा आनन्द-सुख की अनुभूति होती है अथवा "खाओ-पीओ मौज करो", इस संसार में इन इन्द्रियसुख को भोगने के लिए ही जन्मे हैं। भौतिक सुखों से ही मनुष्य-जीवन का मूल्य है, इसी से मनुष्य जीवन की महानता है।

---

७. अमूल्य तत्त्वविचारः श्रीमद् राजचन्द्र।

(२) कोई कहता है कि मनुष्य-जीवन से मात्र दान-पूजा, व्रत-तप, प्रार्थना-ईशाराधना कर देवत्व पदवी या कुछ लौकिक-अलौकिक शक्तियों का संग्रह किया जा सकता है, अतः मनुष्य-जीवन श्रेष्ठ है।

(३) कोई कहता है कि इस मनुष्य भव से मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः यह मनुष्य जन्म कीमती है, श्रेष्ठ है, उत्तम है।

प्रथम कथन के समाधान में हम सबका यह प्रश्न है कि आज तक कोई मनुष्य इस संसार में धन-वैभव आदि के आनन्द से कभी तृप्त हुआ है क्या ? "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की"। भोगों की आनन्द-आकांक्षाओं ने अनेक रोग-शोक-रोष एवं विसंवादों को ही जन्म दिया है, अतः अनेक महापुरुष इस धन-वैभव के स्वरूप को अच्छी तरह जान-समझकर वैरागी हुए हैं, अतः इस धन-वैभव आदि से मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं होती है।

द्वितीय धारणा से भी यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य पर्याय से मात्र देव पदवी की साधना करना कौन-सी महानता है ? क्योंकि स्वर्गों के देव भी पुनः इस मनुष्य जन्म की कामना करते हैं, अतः देव पदवी, स्वर्गों की चाह भी मनुष्य के लिए आधी-अधूरी है।

तृतीय अवधारणानुसार यदि कोई यह कहता है कि मनुष्य भव से मोक्ष की प्राप्ति होती है तो हर कोई व्यक्ति मोक्ष पद का अभिलाषी क्यों नहीं है ? तब मनुष्य भव का महत्त्व, उसकी महानता किस प्रकार सिद्ध हो सकती है ?

अब हम सूक्ष्मरीति से चिन्तन-मनन-विचार करते हैं कि मनुष्य पर्याय की महानता क्यों हैं ? संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य जाति का प्राणी ही एक ऐसा प्राणी है जो संसार की चर-अचर, जड़-चेतन आदि समस्त वस्तु-पदार्थों का मूल्य, उनकी उपयोगिता समझता है। परमाणु से लेकर परमात्मा और पशु से लेकर महात्मा, इन सबका मूल्यांकन करने वाला मनुष्य ही होता है। बस; इस क्रम में भूल इतनी-सी है कि **जो मनुष्य इन सबकी कीमत-मूल्य रखता है, वह**

स्वयं में अपनी यथार्थ कीमत भूला हुआ है। यदि यह मनुष्य अपनी कुछ कीमत करता भी है तो सांसारिक, तुच्छ, भौतिक, विनाशीक सुख-साधनों से अपनी कीमत जोड़कर अपनी अमूल्यता को व्यर्थ कर देता है।

कुछ आत्मप्रवादी; मात्र आत्मा के श्रद्धान-गुणानुवाद को ही श्रेष्ठ मानकर मनुष्य पर्याय का विपर्यास करते हैं, मनुष्यदेह को आत्म-साधना में व्यर्थ समझते हैं। वे कहते हैं कि अनुभव में मात्र चैतन्य आना इतना ही श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन होता है।

इसके समाधान में तो इतना ही कहना है कि विश्व में आत्मा का श्रद्धान (अस्तित्व) तो नास्तिक के अतिरिक्त सभी धर्म (मत) वाले मानते हैं, अतः सभी आत्मार्थी; सम्यक्त्वी सिद्ध हो जावेंगे, अतः सर्वज्ञ की वाणी में जैसा आत्मा का पूर्ण स्वरूप कहा है, वैसा श्रद्धान होने से निश्चय सम्यक्त्व होता है।[८]

इतने पर भी यदि कोई कहता है कि आत्मा की महिमा गाना ही श्रेष्ठ है, क्योंकि आत्मा को ही मोक्ष जाना है, इस शरीर को नहीं, अतः इसमें मनुष्य जीवन का कोई मूल्य नहीं है ?

यदि आत्मा के मोक्ष जाने में मनुष्य पर्याय का कोई महत्त्व नहीं है तब तो आत्मा को निगोद पर्याय से ही मोक्ष चला जाना चाहिए, क्योंकि निगोद जीव के सबसे कम कर्मों की प्रकृति, प्रदेश, स्थिति एवं अनुभाग हैं, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर बोधिदुर्लभ भावना का ही महत्त्व नहीं रहेगा, जिसमें जीव की दुर्लभ पर्यायों का कथन किया गया है। मात्र निगोद एवं मोक्ष; ये दो ही पर्यायें नियत हो जायेंगी। मोक्ष जाने के लिए निगोद जाना होगा, परन्तु ऐसा है नहीं।

जिस प्रकार मिट्टी, ताँबा, पीतल, लोहा, चाँदी, सोने के पात्र; बर्तन की अपेक्षा सामान्य हैं फिर भी सिंहनी का दूध; स्वर्णपात्र में ही ठहरता है। यदि स्वर्णपात्र के अलावा अन्य किसी पात्र में सिंहनी का

---

८. स०सार०, प्र०अ०, मं०।

दूध दुहा जाता है तो वह पात्र ही फट जाता है। उसी प्रकार केवलज्ञान की शक्ति, मोक्ष दिलाने की पात्रता इस मनुष्य देह में ही है, अन्य किसी भी देह में यह पात्रता नहीं है।

यदि तत्त्व ज्ञान की चर्चा मात्र से ही मोक्ष मिल सकता है तो सर्वार्थसिद्धि के देवों के विमान से सिद्ध शिला मात्र बारह योजन की दूरी पर है, वहाँ के अहमिन्द्र देव तैंतीस सागर प्रमाण काल तक तत्त्वज्ञान की चर्चा करते रहते हैं वहीं से उन्हें मोक्ष चले जाना चाहिए, लेकिन सम्यग्दृष्टि अहमिन्द्रों को भी मनुष्य पर्याय की अमूल्यता का ज्ञान होता है। तप कल्याणक के दिन सौधर्मेन्द्र भी मनुष्यों को अपना इन्द्रत्व भेंटकर तीर्थङ्कर भगवान की पालकी उठाने के लिए विह्वल हो उठता है।

"नर काया को सुरपति तरसैं सो दुर्लभ प्राणी।"

जहाँ एक ओर मनुष्य देह को अमूल्य रत्न, देव दुर्लभ पर्याय आदि कहा है, वहीं दूसरी ओर इस मनुष्य देह को अशुचि, अपवित्र, बीभत्स, निन्दित, घिनावनी, मल-मूत्र की पिटारी आदि कुत्सित शब्दों द्वारा सम्बोधित किया गया है।

दक्षिण भारत के महानतम कवि तिरुवल्लुवराचार्य; जिन्होंने दो हजार वर्ष पूर्व तिरुक्कुरल काव्य लिखा था, **आज जिसका अनुवाद विश्व की अस्सी प्रमुख भाषाओं में है।**[९] जिसे तमिल देश में पाँचवाँ वेद माना जाता है। प्रायः हर धर्म-संस्कृति के लोग जिसका समादर करते हैं, उसमें एक बहुत ही श्रेष्ठ आध्यात्मिक वाक्य सङ्कलित है, जिस वाक्य को पढ़-सुनकर एक नयी आध्यात्मिक सोच का जन्म होता है—

आत्मनो वै निजावासः किं स्वं नास्तीह भो ! जनाः।
हीनस्थाने यतो देहे भुङ्क्ते वासेन पीडनम् ॥१०॥

हे आत्मन् ! क्या तेरा कोई निज घर नहीं है जो तू ऐसे अपवित्र शरीर में निवास करता है ?[१०]

---

९. तिरु०, भा०ज्ञा०पी०, प्र०। १०. तिरु०, अ० ६।

इस अमर वाक्य में विचारणीय विषय यह है कि आचार्य इस भगवत् स्वरूप आत्मा का अपना कोई निज घर मानते हैं, अतः उन्होंने अपनी आत्मा से ही यह प्रश्न किया है। जैसे–कोई, किसी आवारा, बे-सहारा भटकते हुए व्यक्ति को देखकर कह देते हैं कि इसका अपना कोई रहने का निज घर-द्वार या ठिकाना नहीं है जो यह इधर-उधर असहाय परिभ्रमण कर रहा है। उसी प्रकार इस चैतन्य चमत्कारमयी भगवान् आत्मा का निज घर मल-सूत्र भरा शरीररूपी पिटारा नहीं हो सकता है।

कवि दौलतराम ने भी कहा है—

"हम तो कबहुँ न निज घर आए,
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराए....
हम तो कबहुँ न...."

किसने रोका है तुम्हें; अपने घर आने से।
या तो मोह का अँधियारा है या वासना का अंधापन।

संसार के जीव जब दुःख से घबराते हैं तब अपने हित के बारे में सोचते हैं। अपने हित के बारे में सोच शुरू होना ही अपने घर की याद आना है, वैरागी होना है। वह वैरागी अपने बन्धुवर्ग को इस प्रकार सम्बोधन करता है—

"आपिच्छ बन्धुवग्गं विमोचिदो गुरु-कलत्त-पुत्तेहिं।
आसिज्ज णाण-दंसण-चरित्त तव वीरियायारं ॥२०२॥" प्रवचनसार

अर्थ—जो मुनि होना चाहता है, वह पहले ही बन्धुवर्ग (सगे सम्बन्धियों) से पूछता है, गुरुजनों (बड़ों) से तथा स्त्री और पुत्रों से अपने को छुड़ाता है। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार को अङ्गीकार करने के लिए वह इस प्रकार अपने बन्धुवर्ग से कहता है—

अहो ! इस पुरुष के शरीर के बन्धुवर्ग में प्रवर्तमान आत्माओ ! इस पुरुष का आत्मा किञ्चित् भी तुम्हारा नहीं है, इस प्रकार तुम निश्चय से जानो, इसलिए मैं तुमसे विदा लेता हूँ। जिसे ज्ञानज्योति प्रकट हुई है, ऐसा यह आत्मा; आज अपने आत्मारूपी अनादि बन्धु के पास जा रहा है।

अहो ! इस पुरुष के शरीर के जनक (पिता) के आत्मा, अहो ! इस शरीर की जननी (माता) के आत्मा, इस पुरुष का आत्मा तुम्हारे द्वारा जनित (उत्पन्न) नहीं है, ऐसा तुम निश्चय से जानो, इसलिए तुम इस आत्मा को छोड़ो। जिसे ज्ञानज्योति प्रकट हुई है, ऐसा यह आत्मा; आज अपने आत्मारूपी अनादि जनक-जननी के पास जा रहा है।

अहो ! इस पुरुष के शरीर की रमणी (स्त्री) के आत्मा, तू इस पुरुष के आत्मा को रमण नहीं कराता, ऐसा तू निश्चय से जान, इसलिए तू इस आत्मा को छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रकट हुई है, ऐसा यह आत्मा; आज अपनी स्वानुभूतिरूपी अनादि रमणी के पास जा रहा है।

अहो ! इस पुरुष के शरीर के पुत्र के आत्मा, तू इस पुरुष के आत्मा का जन्य (पैदा किया पुत्र) नहीं है, ऐसा तू निश्चय से जान, इसलिए तू इस आत्मा को छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रकट हुई है, ऐसा यह आत्मा; आज अपने आत्मारूपी अनादि जन्य के पास जा रहा है। इस प्रकार बड़ों से, स्त्री, पुत्रों से अपने को छुड़ाकर पञ्चाचार अङ्गीकार करता है।[११]

इस प्रकार से भव्य जीव; जब संसार-शरीर एवं भोगों के क्षणिक, तुच्छ सुख के यथार्थ स्वरूप को समझकर विषयभोगों से ऊब जाते हैं तब वे सच्चे एवं अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करने के लिए वैराग्य धारण कर लेते हैं। इस परम वैराग्य को धारण करना ही अपने निज घर की ओर चल देना है, जिसे आचार्यों ने 'मोक्षमार्ग' कहा है।

११. प्र०सा०,गा० २०२, पृ० ४८१-८२।

अपने हित को चाहने वाला कोई एक बुद्धिमान निकट भव्य था। वह अत्यन्त रमणीय भव्य जीवों के विश्राम के योग्य किसी एकान्त आश्रम में गया। वहाँ उसने मुनियों की सभा में बैठे हुए, वचन बोले बिना ही, मात्र अपने शरीर की आकृति से मानो मूर्तिमान-मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाले, युक्ति तथा आगम में कुशल, दूसरे जीवों के हित का मुख्यरूप से प्रतिपादन करने वाले और आर्य पुरुषों के द्वारा सेवनीय, प्रधान-निर्ग्रन्थ आचार्य के पास जाकर, विनय के साथ पूछा– "भगवन् ! आत्मा का हित क्या है ?" आचार्य ने उत्तर दिया–"आत्मा का हित मोक्ष है।" भव्य जीव ने पुनः पूछा–"मोक्ष का क्या स्वरूप है और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है ?" आचार्य ने कहा–"जब आत्मा; भावकर्म, द्रव्यकर्ममल कलङ्क और नोकर्म (शरीर) को अपने से सर्वथा जुदा कर देता है तब उसके अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञानादि गुणरूप और अव्याबाध सुखरूप जो सर्वथा विलक्षण अवस्था उत्पन्न होती है, उसे मोक्ष कहते हैं।"[१२]

विश्व के अधिकांशतः धर्म-मत-सम्प्रदाय भी मोक्ष को स्वीकार करते हैं, परन्तु उन सबके मोक्ष सार्वकालिक न होकर अल्पकालिक एवं सदोष माने गए हैं। वह मोक्ष अत्यन्त परोक्ष है, अतः अपने को तीर्थङ्कर मानने वाले अल्पज्ञानी प्रवादी लोग; मोक्ष के स्वरूप को स्पर्श नहीं करने वाले और असत्य युक्तिरूप वचनों द्वारा उसका स्वरूप सर्वथा अन्य प्रकार से बतलाते हैं। यथा–**(१) सांख्य**–पुरुष का स्वरूप चैतन्य है जो ज्ञेय के ज्ञान से रहित है, किन्तु ऐसा चैतन्य सत्स्वरूप होकर भी असत् ही है, क्योंकि ऐसा मानने पर उसका स्व-पर व्यवसाय लक्षण कोई आकार अर्थात् स्वरूप प्राप्त नहीं होता। **(२) वैशेषिक**–बुद्धि आदि विशेष गुणों का नाश होना ही मोक्ष है, किन्तु यह कल्पना भी असमीचीन है, क्योंकि विशेष लक्षण से रहित वस्तु नहीं होती। **(३) बौद्ध**–जिस प्रकार दीपक बुझ जाता है। उसी

---

१२. सर्वा०सि०, मङ्गलाचरण वृ०१।

प्रकार आत्मा की सन्तान का विच्छेद होना ही मोक्ष है, किन्तु जैसे गधे के सींग केवल कल्पना के विषय होते हैं, स्वरूपसत् नहीं होते। वैसे ही इस प्रकार का मोक्ष भी केवल कल्पना का विषय है स्वरूपसत् नहीं है। यह बात स्वयं उन्हीं के कथन से सिद्ध हो जाती है।[१३]

मोक्ष जाने के पहले सभी मजहब, धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय के व्यक्ति को किसी-न-किसी द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ आदि की पूर्ण श्रद्धा का अवलम्बन जरूरी है, जिसमें उनके अपने-अपने भेद-प्रभेद, परिभाषाएँ एवं स्वरूप हैं, उपादेयता है। जिनकी श्रद्धा-विश्वास के बिना उस धर्म का स्वरूप पुष्ट नहीं होता है।

मोक्ष जाने की प्रक्रिया में इन द्रव्य, तत्त्व एवं पदार्थों आदि का श्रद्धान-ज्ञान-अनुभव करने का मुख्य प्रयोजन क्या है? समस्त प्राणियों में मनुष्य जीवन ही पूर्ण विकसित, विवेकवान आदि विशेषताओं को धारण करता है। मनुष्य की प्राकृतिक जिज्ञासाएँ, चाहे जीव सम्बन्धी हों या अजीव सम्बन्धी हों, हमेशा जाग्रत रहती हैं। इन जीवाजीव सम्बन्धी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए वह कोई-न-कोई हेतु; निमित्त, कारण खोजता रहता है। इस खोज में मनुष्य; किसी-न-किसी ऐसे व्यक्ति, शक्ति, ईश्वर, प्रभु-परमात्मा, ज्ञानी-विज्ञानी, प्रबुद्ध पुरुष को सम्मिलित करता है, जिससे उसके अपने विचारों की पुष्टि हो सके।

द्रव्य शब्द का उल्लेख जैन और वैशेषिक दर्शन में विशेषरूप से मिलता है। जैन दर्शन में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल को द्रव्य कहते हैं तथा वैशेषिक दर्शन में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशा, काल और मन; इन नौ को द्रव्य कहा है। वैशेषिक दर्शन सम्मत-पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और मन; शरीर की अपेक्षा पुद्गल द्रव्य में गर्भित हो जाते हैं और आत्मा की अपेक्षा जीव में गर्भित रहते हैं। आकाश, काल और आत्मा (जीव); ये तीन द्रव्य

---

१३. सर्वा०सि०, मङ्गलाचरण वृ०२।

दोनों दर्शन में स्वतन्त्ररूप से माने गए हैं। वैशेषिक दर्शनाभिमत 'दिशा' नामक द्रव्य; आकाश का ही विशिष्टरूप होने से उसमें गर्भित हो जाता है। धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य की अवधारणा वैशेषिक दर्शन में नहीं है, ये दोनों द्रव्य; जैन दर्शन में ही निरूपित हैं।

जैन मतानुसार मूल द्रव्य; जीव और अजीव ये दो ही हैं, लेकिन अजीव द्रव्य के पाँच भेद हैं, अतः इन छह द्रव्यों में जीव द्रव्य चेतन है और शेष पाँच द्रव्य अचेतन हैं अथवा पुद्गल द्रव्य दृश्यमान होने से सबके अनुभव में आ रहा है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श जिसमें पाया जाता है, वह पुद्गल द्रव्य है, अतः जो भी वस्तु रूपादि से सहित होने के कारण दृश्यमान है, वह सब पुद्गल द्रव्य है। जीव के साथ अनादि से लगे हुए कर्म और नोकर्म (शरीर) स्पष्टरूप से पुद्गल द्रव्य हैं। जीव द्रव्य अमूर्तिक होने से यद्यपि दिखाई नहीं देता है तथापि स्वानुभव के द्वारा उसका बोध होता है। जो सुख-दुःख का अनुभव करता है और जिसे स्मृति तथा प्रत्यभिज्ञान आदि होते हैं, वह जीव द्रव्य है। ज्ञान-दर्शन इसके लक्षण हैं। जीवित और मृत मनुष्य के शरीर की चेष्टा को देखकर जीव का अनुमान अनायास हो जाता है।[१४]

हमेशा से ही जीव द्रव्य के बारे में हर धर्म-मजहब की अवधारणा किसी-न-किसी अपेक्षा से अलग-अलग है। **जैसे**–कोई जीव को ईश्वर का अंश मानते हैं। कोई कई तत्त्वों के संयोग से जीव बनता है, ऐसा मानते हैं। कोई शरीर को ही जीव मानकर श्रद्धान करते हैं। जीव को सुख-दुःख देने वाला कोई ईश्वर-प्रभु-परमात्मा है। जीव के अच्छे-बुरे परिणामों-कर्मों का फल भगवान देता है। सृष्टि (जीव) को बनाने वाला कोई ईश्वर; ब्रह्मा है। सृष्टि की रक्षा करने वाला ईश्वर; विष्णु है। सृष्टि का संहार करने वाला ईश्वर; महेश है। मृत्यु के समय जीव को यमराज, यमदूत, फरिश्ते, काल, मृत्यु आदि ले जाते हैं। ऐसी अनेक अवधारणाएँ हमें कई संस्कृतियों-संस्कारों से पढ़ने-सुनने को मिलती हैं।

---

१४. तत्त्वा०सा०, प्रस्ता०पं०पन्ना०सा०।

जैनाचार्यों ने जीवादि द्रव्यों के स्वरूप की पूर्णता का कथन आगम, युक्ति, प्रमाण, नय, निक्षेप आदि के द्वारा सिद्ध ही नहीं किया, बल्कि अन्य लोगों की कल्पित तथा दूषित मान्यताओं का खण्डन भी किया है।

मुख्यरूप से जीव द्रव्य की संख्या अनन्त है तथा एक जीव के प्रदेशों की संख्या; असंख्यात है। जीव को द्रव्य, अस्तिकाय, पदार्थ, तत्त्व मानकर इसका विशेष विश्लेषण किया जाता है तभी दूषित भ्रान्तियाँ दूर होती है।

जैन दर्शन में अजीव द्रव्यों का विभाजन; धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल एवं काल; इन पाँच प्रकार से किया है। इनमें से प्रथम चार एवं एक जीव द्रव्य; इन पाँचों को पञ्चास्तिकाय कहा है, क्योंकि इनके अनेक; प्रदेश होते हैं। काल द्रव्य का एक ही प्रदेश है, अतः वह काय नहीं है।

अपनी भाषा में समझें तो यूँ कह सकते हैं कि छहों द्रव्य; अस्ति (सत्) रूप तो हैं, क्योंकि द्रव्य का लक्षण सत् कहा है।[१५] किन्तु छहों द्रव्य 'सत्' होते हुए भी प्रथम पाँच द्रव्य; कायवान् (बहुप्रदेशी) हैं, अतः ये पाँच द्रव्य अस्ति के साथ कायवान् होने से अस्तिकाय हैं। कालद्रव्य अस्तिरूप तो है, लेकिन कायवान् नहीं है, इसलिए कालद्रव्य को अस्तिकाय नहीं कहा अर्थात् कालद्रव्य की कायरूप अस्ति नहीं होने से कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है।[१६]

जैन सिद्धान्त के नियमानुसार अजीव द्रव्यों में अनेक परिवर्तन होने पर कभी इनका नाश नहीं होता है, इसी कारण से इन द्रव्यों को 'सत्' कहा है।[१७] यदि इन द्रव्यों में परिवर्तन न हो तो सभी द्रव्यों में कूटस्थता का प्रसङ्ग आ जाएगा।

जहाँ पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्ण; ये असाधारण गुण पाये जाते हैं[१८] वहीं अन्य द्रव्यों में ये गुण नहीं पाये जाते हैं,

---

१५. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू० २९। १६. द्र०सं०, गा० २४-२५। १७. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू० ३०। १८. तत्त्वा० सू०, अ० ५, सू० २३।

क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्व आदि साधारण गुण एवं चेतनत्व, जड़त्व आदि अलग-अलग असाधारण गुण पाये जाते हैं, जिन्हें स्वाध्याय करने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है।

धर्म, अधर्म एवं आकाश; एक-एक, क्रिया रहित, अखण्ड द्रव्य हैं।[१९] जीव और पुद्गल द्रव्य; क्रिया सहित, अनेक द्रव्य हैं। काल द्रव्य एक प्रदेशी होता हुआ भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण नहीं होता है। ये सभी द्रव्य; लोकाकाश में अवगाहन करते हैं।[२०]

सामान्यरूप से धर्म और अधर्म का अर्थ 'पुण्य' और 'पाप' रूप से लिया जाता है, लेकिन यहाँ धर्म-अधर्म द्रव्य का सम्बन्ध पुण्य और पाप से न होकर; उन अजीव द्रव्यों की उस निष्क्रिय शक्ति से है जो गति-स्थिति करने वाले; जीव और पुद्गल को क्रमशः गति-स्थिति में उदासीनरूप से सहकारी होते हैं–उपकार करते हैं।[२१]

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जीव और पुद्गल की अपनी गति-स्थिति नहीं होती है; बल्कि धर्म-अधर्म द्रव्य दोनों माध्यम हैं, जिनके द्वारा जीव और पुद्गल की गति-स्थिति में उदासीनरूप से सहायता मिलती है।[२२]

जैनाचार्यों ने धर्मद्रव्य को समझाने के लिए गाथा में कहा है— 'तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई।' जैसे–पानी; चलती हुई मछली को चलने में उदासीनरूप से सहायता करता है, ठहरी हुई मछली को पानी नहीं चलाता है। वैसे ही गमन करते हुए जीव और पुद्गल को गमन करने में सहकारी धर्मद्रव्य होता है। ठहरे हुए जीव और पुद्गल को धर्मद्रव्य नहीं चलाता है।

शङ्का—धर्मद्रव्य को समझाने के लिए जल और मछली का ही उदाहरण क्यों दिया है ?

१९. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू० ६-७। २०. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू० १२। २१. तत्त्वा० सू०, अ० ५, सू० १७। २२. द्र०सं०, गा० १७-१८।

समाधान—जल में रहने वाले समस्त जीव-जन्तुओं में से मछली ही ऐसा जीव है जो हजार फुट ऊपर से नीचे गिरते हुए जल के सहारे ऊपर की ओर जा सकता है, अतः गाथा में 'अच्छंता णेव सो णेई' कहा है अर्थात् ठहरे हुए जीव, पुद्गल को धर्मद्रव्य चला नहीं सकता है, क्योंकि धर्मद्रव्य गति में प्रेरक निमित्त नहीं है, उदासीन निमित्त है। इससे सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार गिरते हुए जल के सहारे मछली ऊपर की ओर गमन कर सकती है, उसी प्रकार धर्मद्रव्य के सहारे जीव; सिद्धालय तक गमन करते हैं। पुद्गल परमाणु भी एक समय में चौदह राजु लोकाकाश तक गमन कर सकता है। वैज्ञानिक धर्मद्रव्य को ही **'ईथर'** कहते हैं।

लोक-व्यवहार में प्रचलित मान्यता है कि ईश्वर की मर्जी के बिना तो पेड़ का पत्ता तक भी नहीं हिल सकता है अर्थात् जीव और पुद्गल के गमनागमन में किसी ईश्वर का सहयोग होता है। वह अज्ञात ईश्वरीय शक्ति और कोई नहीं; बल्कि धर्मद्रव्य **(ईथर)** ही है।

ठहरते हुए जीव और पुद्गल को ठहरने में अधर्मद्रव्य सहायक होता है। **जैसे**—ठहरते हुए पथिक को वृक्ष की छाया ठहरने में सहायक है।[२३]

जैनाचार्यों ने अधर्मद्रव्य को समझाने के लिए गाथा में दृष्टान्त दिया है—"छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई।" इस छाया और पथिक के दृष्टान्त में; जिस प्रकार चलते हुए पथिक को छाया रोकती नहीं है। उसी प्रकार अधर्मद्रव्य; गमन करते हुए जीव और पुद्गल को रोकता नहीं है।

शङ्का—अधर्मद्रव्य को समझाने के लिए छाया और पथिक का ही दृष्टान्त क्यों दिया?

समाधान—जिस प्रकार छाया; वृक्ष के नीचे आस-पास ही रहती है, ऐसा नहीं है कि छाया; वृक्ष के ऊपर हो और वृक्ष नीचे हो, अतः जब

२३. द्र०सं०, गा० १८।

कोई चलता हुआ पथिक; वृक्ष की छाया देखकर वहाँ रुकना चाहता हो तब वह उस वृक्ष की छाया में रुक जाता है। यदि उसे उस वृक्ष की छाया में नहीं रुकना है तब उस वृक्ष की छाया के नीचे से निकलते हुए भी वृक्ष की छाया उसे रोकती नहीं है, अतः गाथा में ''गच्छंता णेव सो धरई'' कहा है। वैज्ञानिक अधर्म द्रव्य को **'मोमेन्ट आफ एनर्सिया' 'जड़त्व आघूर्ण'** का सिद्धान्त कहते हैं। अधर्मद्रव्य की वह जड़ता; रुकते हुए जीव और पुद्गल को रुकने में सहायक होती है।

अधर्मद्रव्य; धर्मद्रव्य का प्रतिलोम है। ये दोनों; नित्य, अवस्थित एवं अरूपी हैं। इनमें स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्ण का अभाव है। ये लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में व्याप्त हैं। धर्म और अधर्मद्रव्य; एक-एक अखण्ड द्रव्य हैं एवं दोनों असंख्यात प्रदेशी हैं।[२४] प्रदेशत्व गुण के कारण धर्मद्रव्य एवं अधर्मद्रव्य का आकार लोकाकाश की श्रेणी के आकार का है, क्योंकि इन्हीं के सहारे जीव और पुद्गल की गति-स्थिति होती है।

अजीव द्रव्यों में महत्त्वपूर्ण आकाश एक अखण्ड, अनन्तप्रदेशी द्रव्य है, क्योंकि इसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म एवं काल—ये सभी द्रव्य अपने-अपने प्रदेश संख्यानुसार व्याप्त होकर रहते हैं, अतः जैन दर्शन में आकाश द्रव्य के लोकाकाश एवं अलोकाकाश; ये दो भेद किए हैं। लोकाकाश में ही जीवादि द्रव्यों का निवास होता है। लोक के बाहर अनन्त अलोकाकाश है।[२५] **द्रव्यों में प्रदेशत्व गुण के कारण आकाश का आकार समघन-चतुस्त्र है।**

आकाश द्रव्य की अवगाहन शक्ति असीम है। लोकाकाश के एक प्रदेश में; जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म एवं काल के प्रदेशों को अवगाहन प्रदान करने की सामर्थ्य है।[२६]

जैसे—कोई एक व्यक्ति जङ्गल में से एक हजार प्रकार की वनस्पतियों के एक-एक पत्ते लाकर उनका काढ़ा बनाए तो उस काढ़े

२४. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू० ४, १३, ६, ८। २५. द्र०सं०, गा० १९-२०। २६. द्र०सं०, गा० २७।

में एक हजार प्रकार की वनस्पतियों का सत्त्व (अस्तित्व) है। ठीक इसी प्रकार दश हजार, पचास हजार, एक लाख आदि प्रकार की वनस्पतियों के पत्तों को काढ़े में उबालें, उसमें भी एक सुई की नोंक के बराबर काढ़े में दस हजार, एक लाख आदि प्रकार की वनस्पतियों का सत्त्व रहते हुए भी उस सुई की नोंक के बराबर काढ़े का न तो कोई आकार बढ़ता है, न वजन बढ़ता है। ठीक इसी प्रकार से आकाश के एक प्रदेश पर कर्मों की अनन्तानन्त वर्गणाएँ समा जाती हैं। यह सब आकाशद्रव्य के अवगाहन गुण का प्रभाव है। आगम में ऊँटनी के दूध एवं शहद का दृष्टान्त अवगाहन शक्ति के लिए दिया है।

जैन दर्शन में अचेतन एवं मूर्तिक पदार्थ को पुद्‌गल कहा गया है।[२७] जिस द्रव्य में पूरण-गलन, संयोजन-विभाजन हो सके, वही पुद्‌गलद्रव्य है। पुद्‌गल के सरल या आणविक और स्कन्ध या यौगिक; दो आकार होते हैं।[२८] जब किसी पौद्‌गलिक वस्तु का विभाजन किया जाता है तब अन्त में एक ऐसी अवस्था आती है, जहाँ वस्तु का अन्य और कोई विभाजन सम्भव नहीं होता है, इसी अविभाज्य अंश को अणु कहा जाता है।[२९]

भेद, संघात एवं भेद-संघात से स्कन्ध की उत्पत्ति होती है।[३०] स्कन्ध के भेद करने से भी स्कन्ध बनता है। अनेक अणुओं के संघात (मिलने) से स्कन्ध बनता है, परन्तु भेद-संघात से भी स्कन्ध बनता है। **जैसे**–लोहे की हथौड़ी से जब पत्थर तोड़ते हैं तब पत्थर के टूटने से भेद तो हो जाता है, साथ ही लोहे की हथौड़ी का अंश पत्थर के टुकड़ों के साथ ही संघात (चिपक) हो जाता है।

मूर्तद्रव्य में आठ प्रकार के स्पर्श, पाँच प्रकार के रस एवं वर्ण तथा दो प्रकार की गन्ध होती है। जिन की प्रत्येक क्रिया; पुद्‌गल के रूप में अभिव्यक्त होती है अर्थात् पुद्‌गल से इन्द्रिय अनुभव की सभी

२७. तत्त्वा०सू०, अ०५, सू०५। २८. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू०२५। २९. तत्त्वा०सू०, अ०५, सू०२७। ३०. तत्त्वा०सू०, अ०५, सू०२६।

वस्तुएँ बनी हैं, जिनमें प्राणियों के शरीर, वचन तथा मन भी सम्मिलित हैं।[३१] इससे सिद्ध होता है कि जीव तत्त्व; पुद्गल द्रव्य के आधार से संसार में परिभ्रमण करता है, जिसे कर्म कहते हैं।

शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत एवं आतप; ये पुद्गलद्रव्य की दश पर्यायें हैं।[३२]

शब्द—शब्द के अनेक भेद-प्रभेद होते हैं, लेकिन शब्द में भी पुद्गल के स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्ण गुण होते हैं। इसे वैचारिक युक्ति से समझ सकते हैं। शब्द का उद्गम स्थल रसना है, लेकिन कर्णेन्द्रिय के द्वारा उसका वेदन होता है।

शब्द में स्पर्श के आठ गुण—

१. **हल्का** — धीरे से शब्द बोलना, धीरे से शब्द सुनना।
२. **भारी** — जोर से शब्द बोलना, जोर से शब्द सुनना।
३. **ठण्डा** — क्षमा से शब्द बोलना, क्षमा से शब्द सुनना।
४. **गरम** — क्रोध से शब्द बोलना, क्रोध से शब्द सुनना।
५. **रूखा** — द्वेष से शब्द बोलना, द्वेष से शब्द सुनना।
६. **चिकना** — राग से शब्द बोलना, राग से शब्द सुनना।
७. **कड़ा** — अनुशासन से शब्द बोलना, अनुशासन से शब्द सुनना।
८. **नरम** — प्रमाद से शब्द बोलना, प्रमाद से शब्द सुनना।

शब्दों में पाँच रस—वैसे तो रस; रसना इन्द्रिय के द्वारा वेदन होता है फिर भी शब्द बोलने का माध्यम तो जिह्वा इन्द्रिय है।

१. **खट्टा** — कुछ शब्दों को सुनकर मन खट्टा हो जाता है।
२. **मीठा** — कुछ शब्दों को सुनकर मन मीठा हो जाता है।
३. **चरपरा** — कुछ शब्दों को सुनकर मन में ईर्ष्या-जलन होती है।
४. **कडुवा** — कुछ शब्दों को सुनकर मन में कडुवापन आ जाता है।
५. **कषायला** — कुछ शब्दों को सुनकर मन में कषाय उत्पन्न हो जाती है।

३१. तत्त्वा०सू०, अ०५, सू०१९-२०। ३२. द्र०सं०, गा०१६।

शब्दों में दो प्रकार की गन्ध—वैसे गन्ध; नासिका इन्द्रिय के द्वारा जानी जाती है फिर भी कुछ शब्दों को सुनकर मनुष्य; नाक-मुँह सिकोड़ने लगता है, नाक चढ़ा लेता है, अतः शब्दों का प्रभाव नासिका इन्द्रिय पर भी होता है।

१. सुगन्ध — जिन शब्दों को सुनकर सभ्यता की गन्ध आती है, मन खुश होता है, वही शब्द की सुगन्ध है।

२. दुर्गन्ध — जिन शब्दों को सुनकर असभ्यता की दुर्गन्ध आती है, नाक-मुँह सिकोड़ने लगते हैं, वही शब्द की दुर्गन्ध है।

शब्दों में पाँच प्रकार के वर्ण—यद्यपि वर्ण; चक्षु इन्द्रिय के द्वारा जाना जाता है फिर भी जिन शब्दों के द्वारा व्यक्ति का उद्देश्य या क्रिया अभिव्यक्त होती है, उससे रङ्गों का पता चल जाता है।

१. काला — कृष्ण लेश्या युक्त शब्द काले हैं। जिन शब्दों को सुनकर व्यक्ति पता लगा लेता है कि कुछ दाल में 'काला' है अर्थात् उसका मन काला है।

२. नीला — (हरा + पीला) नील लेश्या युक्त शब्द नीले हैं। जिस शब्द को सुनकर आँखें हरी पीली हो जाती हैं।

३. हरा — कपटपूर्ण शब्द हरे हैं। जिन हरे-भरे शब्दों को सुनाकर व्यक्ति दूसरों को ठगता है।

४. पीला — दया, दान युक्त शब्द पीत लेश्या है।

५. सफेद — न्यायपूर्ण, वीतराग शब्द शुक्ल लेश्या है। दूध-का-दूध, पानी-का-पानी, बे-दाग छवि आदि शब्दों की धवलता का कथन करना।

इस प्रकार शब्द में पुद्गल के गुण पाये जाते हैं, अतः शब्द; पुद्गल की पर्याय है, न कि आकाश का गुण।

बन्ध — बन्धादि की दशायें भी अनेक प्रकार से अनुभव में आती हैं।

सूक्ष्म — आज के कई वैज्ञानिक आविष्कार इन्हीं पुद्‌गल पर्यायों के रूप हैं, जिन्हें **सॉफ्टवेयर** कहते हैं। इसके अन्त्य सूक्ष्म और आपेक्षिक सूक्ष्म; ये दो भेद हैं।

स्थूल — जिन्हें **हार्डवेयर** कहते हैं, वे स्थूल हैं। इसके अन्त्य स्थूल और आपेक्षिक स्थूल; ये दो भेद हैं।

संस्थान — अनेक प्रकार की आकृतियाँ संस्थान हैं।

भेद — भेद यानि टुकड़े। इसके भी उत्कर आदि छह भेद हैं।

तम — प्रकाश का प्रतिपक्षी तम कहलाता है। **जैसे– नेगेटिव।**

छाया — जो प्रकाश को रोककर उत्पन्न होती है। **जैसे– पॉजेटिव।**

उद्योत — चमक या प्रकाश उद्योत है।

आतप — उस चमक या प्रकाश के ओज को आतप कहते हैं।

इस प्रकार पुद्‌गल की दश पर्यायें हैं। आकाश के जितने हिस्से-भाग या स्थान को अविभाज्य पुद्‌गल परमाणु घेरता है, उसे प्रदेश कहते हैं।[३३] इस लक्षण के अनुसार जितना बड़ा अणु है, उतना आकाश का एक प्रदेश है एवं जितना आकाश का एक प्रदेश है, उतना बड़ा एक पुद्‌गल परमाणु है।

इस प्रकार एक प्रदेश या परमाणु का लक्षण बताने पर प्रश्न उठता है कि आकाश का एक प्रदेश का आकार कैसा है, जिससे परमाणु का आकार निकाला जा सके ?

इसके समाधान के लिए हम सबसे पहले आकाश की संरचना का विश्लेषण करते हैं। जब जीव और पुद्‌गल लोकाकाश में गति करते हैं तब गति; श्रेणी के अनुसार होती है।[३४] आकाश प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणी कहते हैं।[३५] जिस प्रकार वस्त्र में ताना (खड़ा धागा)

---

३३. द्र०सं०, गा० २७। ३४. तत्त्वा०सू०, अ० २, सू० २६। ३५. सर्वा०सि०, वृ० ३१२।

बाना (आड़ा धागा) होता है। उसी प्रकार आकाश प्रदेशों की पंक्ति भी ताना-बानारूप होती हैं। जिससे उनके बीच समघनचतुस्त्र (सम चौकोर) स्थान बनता है, उसे आकाश का एक प्रदेश कहा जाता है। ऐसे समघनचतुस्त्र आकाश प्रदेश में जो अविभाज्य पुद्गल का अंश समा जाता है, वह अणु है। इससे सिद्ध होता है कि परमाणु का आकार समघनचतुस्त्र है।[३६] कोई भी चौकोर वस्तु षट् पहल (चारों तरफ के चार एवं नीचे-ऊपर के दो) एवं आठ कोने (हर एक मोड़ के ऊपर नीचे के दो कोने, ऐसे चारों मोड़ों के आठ) वाली होती है। **जैसे**–पुस्तक के आकार में चारों तरफ के चार पहल एवं ऊपर-नीचे के दो पहल; ऐसे छह पहल हैं; एक मोड़ में दो कोने से चार मोड़ों में आठ कोने होते हैं।

महापुराण के कर्ता जिनसेनाचार्य परमाणु को गोल मानते हैं[३७] अब सूक्ष्म रीति से यह विचार करना है।

इस प्रसङ्ग में हमें पुनः परमाणुओं के भेद-प्रभेदों को समझना होगा। परमाणु दो प्रकार का होता है—कारणरूप और कार्यरूप।[३८] **अणुओं के चार भेद भी हैं; कार्य, कारण, जघन्य एवं उत्कृष्ट।** स्कन्धों के अवसान को **कार्य** परमाणु जानना। जो चार धातुओं (पृथ्वी, जल, तेज, वायु) का हेतु है, वह **कारण** परमाणु जानना। स्कन्ध के विघटन से उत्पन्न होने वाला **कार्य** परमाणु और जिन परमाणुओं के मिलने से कोई स्कन्ध बनता है, वे **कारण** परमाणु हैं।[३९] जब कारण परमाणु का एक गुण स्निग्धता या रूक्षतारूप होने से सम या विषमबन्ध के अयोग्य ऐसा **जघन्य** परमाणु है। एक गुण स्निग्धता या रूक्षता के ऊपर दो गुण वाले और चार गुण वाले का सम्बन्ध होता है तथा तीन गुण वाले का और पाँच गुण वाले का विषमबन्ध होता है, यह **उत्कृष्ट** परमाणु है।[४०]

३६.आ०सा०, अ० ३, श्लो० १३, २४। ३७. महा०पु०, सर्ग २४, श्लो० १४८। ३८. न०च०, वृ० १०१। ३९. पं०का०, गा० ८०, ता०वृ०। ४०. नि०सा०, गा० २५, ता०वृ०।

यह जीव; प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्व-वितर्क-वीचार की भूमिका में द्रव्यपरमाणु एवं भावपरमाणु का पृथक्त्वरूप ध्यान करता है।[४१] **द्रव्यपरमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता एवं भावपरमाणु से भाव की सूक्ष्मता कही गयी है।** भाव शब्द से उन्हीं जीवद्रव्य का स्वसंवेदन परिणाम ग्रहण करना चाहिए। उनके भाव का परमाणु अर्थात् रागादि विकल्प रहित सूक्ष्मावस्था है, क्योंकि वह इन्द्रिय और मन के विकल्पों का विषय नहीं है।[४२] भावपरमाणु के क्षेत्र की अपेक्षा तो एक प्रदेश है। व्यवहार काल का एक समय है और भाव की अपेक्षा एक अविभागी प्रतिच्छेद है। वहाँ पुद्गल द्रव्य के गुण की अपेक्षा तो स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण के परिणमन का अंश लीजिए तथा जीव के गुण की अपेक्षा ज्ञान का तथा कषाय का अंश लीजिए। ऐसे द्रव्यपरमाणु (पुद्गल परमाणु) एवं भावपरमाणु (एक अविभागी प्रतिच्छेद) यथासम्भव समझना चाहिए।[४३]

द्रव्यपरमाणु के चौकोरपने की सिद्धि तो आकाश प्रदेश के द्वारा सिद्ध है, लेकिन भावपरमाणु का आकार कैसा है ? यह समझना है।

जहाँ-जहाँ भावपरमाणु की परिभाषायें हैं, उनके विश्लेषण से भावपरमाणु का माप-आकार निकल सकता है।

(१) परमात्मप्रकाश की टीकानुसार, "**भाव**" शब्द से उस ही आत्म द्रव्य का स्वसंवेदन परिणाम ग्रहण करना चाहिए।" यहाँ स्वसंवेदन का अर्थ मतिज्ञान लेना, क्योंकि स्वसंवेदन; मतिज्ञान का ही पर्यायवाची नाम है।[४४] **इस भावपक्ष में भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि आचार्यों ने आत्मद्रव्य लिया है, आत्मतत्त्व नहीं,** अतः जब इस जीवद्रव्य की सबसे छोटी पर्याय, सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के मरण के तीसरे समय में सबसे जघन्य अवगाहना होती है, जिसका आकार गोल होता है,[४५] अतःआत्मद्रव्यगत ज्ञान का आकार भी तदाकार ही होगा, जिससे भावपरमाणु संयोगी अवस्था में गोल कहा जाता है।

---

४१. सर्वा०सि०, वृ० ९०६। ४२. पर० प्र०, टी०। ४३. रा०वा०, अ० ९, सूत्र २७, वा० ७३३। ४४. तत्त्वा०सा०अ० १, श्लो० १९ श्लो०वार्ति० भा० १। ४५. धव०पु० ११/४, २, ५; २०/३८/८।

(२) भावपरमाणु; इन्द्रिय और मन के विकल्पों का विषय नहीं है। इस कथन के अनुसार जीव के जब विग्रहगति में कार्मण काययोग होता है तब उस जीव के इन्द्रिय और मन का सम्पर्क नहीं होता है, क्योंकि कार्मण शरीर निरुपभोग होता है अर्थात् इन्द्रिय और मन के विषयों का ग्रहण नहीं करता है।[४६] ऐसे (संयोगी अवस्था में) जीव के; उस विग्रहगति के तीसरे समय की सूक्ष्मावस्था में कार्मण शरीर के साथ सबसे जघन्य अवगाहना गोल होती है।

(३) राजवार्तिककार के कथनानुसार भावपरमाणु को; जीव के गुण अपेक्षा ज्ञान का तथा कषाय का अंश लिया है। इस अपेक्षा से भी सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के तीसरे समय में जो जघन्य गोल अवगाहना होती है, वहाँ ज्ञान एवं कषाय के जघन्य अंश होते हैं, अतः जिनसेनाचार्य द्वारा कथित जिस परमाणु का आकार गोल सिद्ध होता है, वह भावपरमाणु है।

आज आधुनिक विज्ञान का विकास भी जैन धर्म के **तत्त्वार्थसूत्र के अनुश्रेणि गतिः**[४७] इस सूत्र के अनुसार ही हो रहा है। टी.वी., कम्प्यूटर, दूर संचार व्यवस्था आदि इसी सूत्र की देन हैं। जब भी टी.वी. या कम्प्यूटर पर चित्र बनाते हैं तब उनकी स्क्रीन पर ग्राफ्स बनते हैं। उन्हीं ग्राफ्स के अनुपात से चित्र बनते हैं। समय बताने वाली इलेक्ट्रानिक घड़ियों में भी समय की संख्या ग्राफ्स द्वारा ही उभरकर आती है। शून्य भी गोलाकार न होकर चौकोर बनकर आता है। दो आदि की संख्याएँ भी ऐंगिल से मुड़कर ही बनती हैं, यही अनुश्रेणी गति का सिद्धान्त है। गति के दो नियम हैं—(१) देश नियम; (२) काल नियम।

छहों द्रव्यों में अन्तिम द्रव्य है काल, क्योंकि उसमें भी द्रव्य के लक्षण पाए जाते हैं।[४८] कालद्रव्य सभी द्रव्यों का उपकार करता है।[४९] यदि कालद्रव्य न हो तो सभी द्रव्य कूटस्थ (अपरिवर्तनीय) हो जाएँगे, जिससे सभी द्रव्यों की सभी व्यवस्थाएँ-अवस्थाएँ अपरिवर्तनीय

---

४६. तत्त्वा०सू०, अ० २, सू० ४४। ४७. तत्त्वा०सू०, अ० २, सू० ३०। ४८. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू० २९-३०। ४९. तत्त्वा०सू०, अ० ५, सू० २२।

होने से सभी द्रव्यों में अनवस्था दोष उत्पन्न हो जाएगा। कालद्रव्य सभी द्रव्यों की पर्यायों में परिवर्तन कराने में उदासीन कारण है, क्योंकि द्रव्यों के उत्पाद-व्यय की गणना कालद्रव्य के द्वारा ही होती है अन्यथा काल द्रव्य के वस्तुत्व गुण का अभाव होने से काल द्रव्य की महत्ता ही समाप्त हो जाएगी।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से कालद्रव्य को समय (टाइम) के रूप में स्वीकार किया है, जिसका व्यावहारिक विभाजन घड़ी, घण्टा, मिनट, सेकण्ड आदि के रूप में किया जाता है। 'समय' निश्चय काल का एक रूप है, परन्तु जीव और पुद्गल की गति द्वारा अभिव्यक्त होने के कारण 'परिणाम' कहा जाता है।

एक शुद्ध पुद्गल परमाणु को आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक मन्दगति से गमन करने में जितना काल लगता है, उसे एक समय कहते हैं, अतः एक समय का माप एक पुद्गल परमाणु की मन्दगति से निकाला गया है।[५०]

शङ्का—वैसे तो एक शुद्ध पुद्गल परमाणु तीव्रगति से लोकाकाश में चौदह राजु गमन कर सकता है, इस तीव्रगति में भी वह पुद्गल परमाणु लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों को छूता हुआ एक ही समय में जाता है, अतः एक समय के भी असंख्यात समय भेद होना चाहिए ?[५१]

समाधान—नहीं; क्योंकि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने हाथ से एक चावल को मन्दगति से उठाकर एक समान दूरी पर आराम से पहुँचा देता है, वही व्यक्ति एक मुट्ठी भर चावल तीव्रगति से उससे भी अधिक दूरी तक पहुँचा देता है। इस प्रसङ्ग में एक चावल की समान दूरी एवं **मन्दगति** तथा एक मुट्ठी चावल की अधिक दूरी एवं तीव्रगति का विश्लेषण समझना जरूरी है। जहाँ एक मुट्ठी चावल को **तीव्र गति से** एक समय में उठाकर अधिक दूर तक रखने में; मुट्ठी भर चावल के बराबर समय का भेद नहीं हुआ, समय तो एक ही लगता है। उसी

५०. प्र०सा०, गा० १३९ ता०वृ०। ५१. प्र०सा०, गा० १३९ ता०वृ०।

प्रकार एक समय में तीव्रगति वाले पुद्‌गल परमाणु का लोकाकाश के चौदहराजु के असंख्यात प्रदेश छूने से समय भेद नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि समय अविभाज्य है।

समय को कालाणु भी कहते हैं, लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु रत्नों की राशि के समान स्थित है।[५२] कालाणु का आकार भी जैसे—आकाश प्रदेश के आकार के समान परमाणु है। वैसा ही कालाणु का आकार समघनचतस्त्र, छह पहल, आठ कोण वाला है, क्योंकि द्रव्य का प्रदेशत्व गुण के लक्षणानुसार कालद्रव्य का कोई-न-कोई आकार होना चाहिए।

शङ्का—कालद्रव्य को समझाते समय आचार्यों ने कालाणुओं को रत्नों की राशि का ही उदाहरण क्यों दिया, गेहूँ आदि धान्य या सामान्य रेती, कङ्कड़ों आदि के ढेर का उदाहरण क्यों नहीं दिया?

समाधान—गेहूँ आदि धान्य की राशि घुन जाती है, सड़ जाती है, रखी-रखी पुरानी होकर आपस में चिपक भी जाती है। सामान्य रेत या कङ्कड़ की कीमत भी सामान्य है, लेकिन रत्नराशि घुनती-सड़ती नहीं है, आपस में रखी चिपकती भी नहीं है, पुरानी भी नहीं होती। लोक व्यवहार में जिस प्रकार रत्न कीमती होते हैं। वैसे ही काल या समय अमूल्य होता है। **जैसे**—रत्नराशि सड़ती-घुनती, चिपकती नहीं है। वैसे ही कालाणु का स्वरूप है, इन्हीं सब कारणों से कालद्रव्य को रत्नराशि की उपमा दी गयी है।

काल द्रव्य के दो भेद हैं—(१) निश्चय काल; (२) व्यवहार काल। निश्चय काल; वर्तना लक्षण वाला है एवं व्यवहार काल; परिणाम, क्रिया, परत्वापरत्व लक्षण वाला है।[५३]

समय दर्शाने वाली घड़ी में घण्टा-मिनट एवं सेकण्ड के काँटे लगे होते हैं। घड़ी की जिस बीच की धुरी में काँटे लगे होते हैं, वह धुरी निश्चय काल का प्रतीक है, क्योंकि वह धुरी अपने में ही वर्तन

---

५२. द्र०सं०, गा० २२। ५३. तत्त्वा० सू०, अ० ५, सू० २२।

कर रही है, लेकिन उसके सहारे घूमने वाले घण्टा, मिनट, सेकण्ड के काँटे व्यवहार काल के प्रतीक हैं।

साहित्यिक कल्पन–इन छहों द्रव्यों से संसार का व्यवहार–व्यापार चलता है। जीवद्रव्य; सरस्वतीरूप है। जिस प्रकार सरस्वती; ज्ञान की मूर्ति कही जाती है। वैसे ही यह जीव; ज्ञानमय होने से सरस्वती है। पाँच अजीवद्रव्य; लक्ष्मी (धन) के रूप हैं। पुद्‌गलद्रव्य का व्यापार सर्वत्र अनुभव में आता है। धर्मद्रव्य; गमनागमनरूप टोल टेक्स के रूप में प्रयोग होता है। अधर्मद्रव्य; आरक्षण का रूप है। आकाशद्रव्य; अन्तरिक्ष, आकाश का भी हवाई क्षेत्र होने से टेक्स या क्रय-विक्रय होता है। कालद्रव्य; समय सीमा से अनुसार कार्य करना-कराना अर्थात् काल द्रव्य के द्वारा धन कमाना है।

इस प्रकार जीवद्रव्य को छोड़कर; पाँच अजीव-अचेतनद्रव्य हैं, जिनके कारण विश्व में अनेक चमत्कार, आविष्कार दिखाई देते हैं। जीवद्रव्य; इन्हीं अजीव द्रव्यों की अनेक परिणमनशील पर्यायों से प्रभावित है, अतः कोई-कोई इन्हें ईश्वरीय, दैविक-भौतिक आदि अवस्थाओं के भिन्न-भिन्नरूप में स्वीकार कर पूजनीय-वन्दनीय-नमस्करणीय, संग्रहणीय आदि बना लेते हैं और भटक जाते हैं, अतः जैनाचार्यों ने इन जीव-अजीव द्रव्यों के यथार्थ स्वरूप को सामने रखकर मनुष्यों की कपोल कल्पित भ्रान्तियों-कुधारणाओं पर कुठाराघात किया है।

तत्त्व–द्रव्य के बाद जैनशास्त्रों में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष; इन सात तत्त्वों का वर्णन आता है। तत्त्व शब्द का प्रयोग जैनदर्शन के सिवाय सांख्य दर्शन में भी हुआ है। सांख्य दर्शन में प्रकृति, महान् आदि पच्चीस तत्त्वों की मान्यता है। वस्तुतः संसार में जिस प्रकार जीव और अजीव; ये दो ही द्रव्य हैं, उसी प्रकार जीव और अजीव; ये दो ही तत्त्व हैं। जीव के साथ अनादिकाल से कर्म और नोकर्म रूप अजीव का सम्बन्ध हो रहा है और उसी सम्बन्ध के कारण जीव की अशुद्ध परिणति हो रही है। जीव और अजीव का

परस्पर सम्बन्ध होने का जो कारण है, वह आस्रव कहलाता है। दोनों का परस्पर सम्बन्ध होने पर जो एकक्षेत्रावगाहरूप परिणमन होता है, उसे बन्ध कहते हैं। आस्रव के रुक जाने को संवर कहते हैं। सत्ता में स्थित पूर्व कर्मों का एक देश दूर होना निर्जरा है और सदा के लिए आत्मा से समस्त कर्म और नोकर्म का छूटना मोक्ष है।[५४]

तत्त्व शब्द की निष्पत्ति में 'तत्+त्व' है। तत् सर्वनाम पद है, त्व प्रत्यय भाववाची है, ऐसे तत्त्व शब्द बना है। "उसी भाव रूप।" जो वस्तु जिस रूप है, उसका उसी रूप होना 'तत्त्व' कहलाता है।[५५] 'तस्य भावस्तत्त्वम्'–जीवादि वस्तुओं के प्रकरण में ये सात तत्त्व अपना बहुत महत्त्व रखते हैं। **इनका यथार्थ निर्णय हुए बिना मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है।[५६] यही इस ग्रन्थ का मूल विषय है।**

पदार्थ–व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः।[५७] व्यक्ति, आकृति और जाति आदि पदार्थ हैं। अर्थोऽभिधेयः पदस्यार्थः पदार्थः।[५८] अर्थ अर्थात् अभिधेय पद का अर्थ सो पदार्थ है, अतः जानने योग्य या प्रयोजनभूत अथवा व्यापक अर्थ को पदार्थ कहते हैं।

सर्वद्रव्यगुणपर्यायात्मिकता इति पदार्थः। जो; द्रव्य, गुण एवं पर्यायमय हो, वह पदार्थ है।

द्रव्य, गुण और पर्याय; अभिधेय भेद होने पर भी अभिधान का अभेद होने से 'अर्थ' हैं। जो गुणों और पर्यायों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, ऐसे अर्थ 'द्रव्य' हैं। जो आश्रयभूत द्रव्यों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, ऐसे अर्थ 'गुण' हैं। जो द्रव्यों के द्वारा क्रम परिणाम से प्राप्त किये जाते हैं, ऐसे अर्थ 'पर्याय' हैं।[५९] इस कथनानुसार द्रव्य, गुण, पर्याय; इन तीनों को अर्थ कहा जाता है। जो सब पदार्थों को द्रव्य, गुण

५४. तत्त्वा०सा०प्र०पृ० ११। ५५. सर्वा०सि०, सम्पा० जगरूपसहाय एडवोकेट। ५६. तत्त्वा०सा०, प्र०पृ० ११। ५७. न्या०सू० २/२/६३। ५८. न्या०वि०टी०, १/७/१४०/१५। ५९. प्रव०सा०, गा० ८७ टी०।

और पर्याय सहित जानता है, वही सम्यग्दृष्टि है, क्योंकि पदार्थ वास्तव

में द्रव्यमय है। द्रव्य; गुणमय है। द्रव्य और गुणों से पर्याय होती है, अतः निश्चय से ज्ञान का विषयभूत पदार्थ; द्रव्यमय होता है। सब द्रव्य; गुणमयी हैं। द्रव्य व गुणों से पर्याय होती हैं।[६०]

पद+अर्थ=पदार्थ। द्रव्य, गुण एवं पर्यायें; अर्थ हैं। इन तीनों पद-अवस्थाओं से जो सहित हो वह पदार्थ है। **जैसे**–स्वर्ण, पीलापन, आभूषण। स्वर्ण द्रव्य है, पीतत्व उसका गुण है, आभूषण पर्याय है एवं उस आभूषण का जो नाम है, वह पदार्थ है। **जैस**–शक्कर एक द्रव्य है, मीठा उसका गुण है, मिठाई उसकी पर्याय है एवं उस मिठाई का नामकरण कि यह लड्डू है, पेड़ा है, बर्फी है आदि नाम पदार्थ हैं, क्योंकि इन सबमें शक्कर है, मीठा है एवं मिठाई है, अतः उस मिठाई का नाम पदार्थ है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्षमार्ग में साधनभूत पदार्थों के नाम एवं उनके स्वरूप का वर्णन 'पञ्चास्तिकाय' ग्रन्थ में संक्षेपरूप से किया है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध एवं मोक्ष; ये नव पदार्थों के नाम है[६१], लेकिन समयसार में इन्हें पदार्थ न कहकर नव तत्त्व कहा है।[६२] इसी गाथा की भूमिका एवं टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने छठें, सातवें एवं आठवें कलश में नव तत्त्वों का ही निर्देश किया है।[६३]

शङ्का यह है कि एक ही आचार्य ने दोनों ग्रन्थों में परस्पर विरोधी कथन क्यों किया ?

इस शङ्का के समाधान में जब तक पदार्थ एवं तत्त्व की परिभाषाओं का विश्लेषण नहीं समझेंगे तब तक इसका समाधान नहीं होगा।

जैसे कि पहले कही पदार्थ की परिभाषाओं में द्रव्य, गुण, पर्यायें सम्मिलित हैं एवं तत्त्व अकेला भाव स्वरूप है। **जहाँ आगम ग्रन्थ हैं, वहाँ नव पदार्थ हैं,** क्योंकि पदार्थ में उनके द्रव्य, गुण एवं पर्यायों का ही विश्लेषण है और **जहाँ तत्त्व हैं, वहाँ मात्र उनके भावों का**

६०. प्रव०सा०, गा० ९३ टी०/गा० १०। ६१. पं०का०, पृ० २७७, गा० १०८। ६२. स०सा०, पृ० २९, गा० १३। ६३. स०सा०, पृ० २७-२९, गा०१२-१३।

कथन या विश्लेषण है, अतः समयसार में नव पदार्थों को नव तत्त्व इसलिए कहा कि उन्हें मात्र नव तत्त्वों का ही विश्लेषण करना है न कि उनके द्रव्य, गुण और पर्यायों का। यदि समयसार में नव पदार्थ मानकर द्रव्य, गुण, पर्यायों का वर्णन करना पड़े तो जीवसमास, गुणस्थान आदि के भेद-प्रभेद सभी की पूर्ण व्यवस्था करनी होगी, परन्तु समयसार में पदार्थों के भाव मात्र से तत्त्व का स्वरूप ग्रहण किया गया है, अतः समयसार में नव पदार्थों का नाम; नव तत्त्वरूप ग्रहण किया गया है, क्योंकि समयसार एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है तथा पञ्चास्तिकाय में नव पदार्थों का संक्षेप रुचि शिष्य की अपेक्षा कथन है, अतः समयसार एवं पञ्चास्तिकाय में परस्पर विरोधी कथन नहीं है।

कहने का तात्पर्य यह है कि तत्त्व में भेद नहीं होता हैं, जीव यानि जीव, अजीव यानि अजीव, आस्रव यानि आस्रव, किन्तु जब तत्त्व के भेद कहते हैं तब उसे इस प्रकार समझें, जैसे–जीव के दो भेद-संसारी एवं मुक्त, इसी प्रकार इनके भी आगे भेद-प्रभेद होते हैं। अजीव के पाँच भेद; पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल। आस्रव के दो भेद; भावास्रव एवं द्रव्यास्रव।

इसी प्रकार बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष के भेद-प्रभेद करना; ये सब पदार्थ संज्ञा को प्राप्त होते हैं। **तत्त्व की व्याख्या नहीं हो सकती, पदार्थ की व्याख्या होती है।**

तत्त्वार्थसूत्रकार ने जब सम्यग्दर्शन का कथन किया तब तत्त्व और अर्थ के यथार्थ श्रद्धान को ही सम्यग्दर्शन कहा है, न अकेले तत्त्व को और न ही अकेले अर्थ (पदार्थ) के श्रद्धान को, क्योंकि तत्त्व एवं अर्थ दोनों के स्वरूप अलग-अलग होने से मात्र एक के श्रद्धान करने से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, अतः सूत्र में तत्त्व और अर्थ; इन दोनों पदों (अवस्थाओं) का ग्रहण किया है।[६४]

---

६४. सर्वा०सि०, वृ० १२।

पदार्थों के यथार्थ ज्ञानमूलक श्रद्धान का संग्रह करने के लिए

दर्शन के पहले सम्यक् विशेषण दिया है। जिस-जिस प्रकार से जीवादिक पदार्थ अवस्थित हैं, उस-उस प्रकार से उनका जानना सम्यग्दर्शन है।[६५] जीवादि पदार्थों को विषय करने वाला यह सम्यग्दर्शन किस प्रकार उत्पन्न होता है ?[६६]

सात तत्त्वों का प्ररूपण करते समय शिष्य ने शङ्का की है कि सूत्र में पुण्य-पाप का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि पदार्थ नव होते हैं ? इसका समाधान करते हुए कहा कि पुण्य-पाप का आस्रव एवं बन्ध तत्त्व में अन्तर्भाव हो जाता है, अतः इनका सूत्र में ग्रहण नहीं किया, क्योंकि यहाँ मोक्ष का प्रकरण होने से सात तत्त्वों की महत्ता दर्शाई गयी है।[६७]

जो सम्यग्दर्शनादि एवं जीवादि पदार्थ कहे हैं, उनके विवक्षा-भेद को व्यवस्थित करने के लिए नामादि के द्वारा उनका निक्षेप किया गया है। इसमें जिस प्रकार जीव पदार्थ का नामादि से न्यास किया है, उसी प्रकार अन्य अजीवादि पदार्थों में भी नामादि निक्षेप विधि लगा लेना चाहिए।[६८]

सम्यग्दर्शन के विषयरूप से जो जीवादि पदार्थ कहे हैं, उनमें से जीव पदार्थ का व्याख्यान किया, अब अजीव पदार्थ का व्याख्यान विचार करना है, अतः उसकी संज्ञा और भेदों का कथन करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं।[६९]

इस तरह पूज्यपादाचार्य ने सर्वार्थसिद्धि टीका में हर तत्त्व के कथन की समाप्ति एवं उत्थानिका में पदार्थ शब्द का ही निर्देश किया है। इस प्रकार जहाँ भी पूज्यपादाचार्य ने तत्त्व को पदार्थ बनाकर विवेचन किया है, वहाँ पर तत्त्व और पदार्थ के स्वरूप में अन्तर अवश्य है। इसे हमने प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय एवं समयसार के नवपदार्थ एवं नवतत्त्वों में अन्तर से सिद्ध किया है।

---

६५. सर्वा०सि०, वृ० ५। ६६. सर्वा०सि०, वृ० १३। ६७. सर्वा०सि०, वृ० १९। ६८. सर्वा०सि०, वृ० २१, २२। ६९. सर्वा०सि०, वृ० ५२६।

एक सामान्य कथन द्वारा यदि हम द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, पदार्थ

एवं तत्त्व में अन्तर निकाल लें तो विषय और भी स्पष्ट हो जाएगा।

जैसे–छह द्रव्यों में पहले **जीवद्रव्य** है। पञ्चास्तिकाय में पहले **जीवास्तिकाय** है। नव पदार्थों में पहले **जीवपदार्थ** है एवं सात तत्त्वों में पहले **जीवतत्त्व** है। इन चारों में पहले जीव सामान्य है, लेकिन इन चारों के विशेषण अलग-अलग क्यों हैं ?

छहों द्रव्यों में जीवद्रव्य 'द्रव्य' की अपेक्षा से है, क्योंकि जीव में द्रव्य का लक्षण 'सत्' पाया जाता है।[७०] अतः सर्वार्थसिद्धिकार ने प्रथम अध्याय के सूत्र संख्या आठ की व्याख्या करते हुए लिखा है कि अब जीवद्रव्य की अपेक्षा सत् आदि अनुयोगद्वारों का कथन करते हैं।[७१] इन अनुयोगद्वारों में जीव के गुणस्थान एवं मार्गणा का कथन किया है।

जैसे–द्रव्य; ऐसा कहने पर भी उन-उन पर्यायों को द्रवता है अर्थात् प्राप्त होता है, इस प्रकार इस व्युत्पत्ति से युक्त जीव-अजीवादि और उनके भेद-प्रभेदों का संग्रह हो जाता है।[७२] उस संग्रह नय से ग्रहण किए गए पदार्थों का विधिपूर्वक अवहरण अर्थात् भेद करना व्यवहार नय है।

शङ्का–विधि क्या है ? **समाधान**–जो संग्रह नय के द्वारा गृहीत अर्थ है, उसी के आनुपूर्वी क्रम से व्यवहार प्रवृत्त होता है, यह विधि है। यथा–सर्वसंग्रहनय के द्वारा जो वस्तु ग्रहण की गयी है, वह अपने उत्तर भेदों के बिना व्यवहार कराने में असमर्थ है, इसलिए व्यवहार नय का आश्रय लिया जाता है। यथा–जो सत् है वह या तो द्रव्य है या गुण। इसी प्रकार संग्रहनय का विषय जो द्रव्य है, वह जीव-अजीव विशेष की अपेक्षा किए बिना व्यवहार कराने में असमर्थ है, इसलिए जीवद्रव्य है और अजीवद्रव्य है, इस प्रकार के व्यवहार का आश्रय लिया जाता है। जीव और अजीवद्रव्य भी जब तक संग्रह नय के विषय रहते हैं तब तक वे व्यवहार कराने में असमर्थ रहते हैं, इसलिए व्यवहार से जीव द्रव्य के देव, नारकी आदिरूप और अजीवद्रव्य के घटादिरूप भेदों का

---

७०. सर्वा०सि०, सू० २९, वृ० ५८२। ७१. सर्वा०सि०, वृ० ३४।

आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार इस नय की प्रवृत्ति वहीं तक होती है जहाँ तक वस्तु में फिर कोई विभाग करना सम्भव नहीं रहता।[७३] इससे यह सिद्ध होता है कि द्रव्यों के गुण एवं पर्यायों का विश्लेषण चरम सीमा तक करना द्रव्यत्व गुण के महत्त्व को प्रदर्शित करता है अर्थात् जीवादि द्रव्यों का 'द्रव्य' की परिभाषानुसार कथन करने से ही जीवादि द्रव्यों की निर्दोष सिद्धि होती है।

पञ्चास्तिकाय में जीवादि द्रव्यों के अस्तित्व का कथन है। जो चार्वाक आदि मत; जीव के अस्तित्व को नहीं मानते या विकृत रूप में मानते हैं, उन्हें इस जीव के पूर्ण एवं निर्दोष अस्तित्व को शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ आदि द्वारा अनेक युक्ति-उपायों द्वारा सिद्ध किया है।[७४]

इन्हीं जीवादि अस्तिकाय के अस्तित्व को कायरूप (बहुप्रदेशी-पना) से स्वीकार करना अस्तिकाय है। इसमें जीवादि द्रव्य; आकाश के कितने प्रदेश क्षेत्र को स्पर्शित करते हैं, इसका भी ज्ञान होता है, अतः जीवादि जो बहुप्रदेशी द्रव्य हैं, उन्हें 'क्षेत्र' की अपेक्षा कायवान् कहा है। इसी प्रकार अन्य बहुप्रदेशीय द्रव्यों के अस्तिकाय का अस्तित्व जानना चाहिए।

नव पदार्थों में प्रथम जीव है। पदार्थ शब्द की सिद्धि पहले कर दी गयी है। यहाँ मात्र जीव पदार्थ क्यों है? इसका कथन करना है। जीवादि पदार्थों का तीनों कालों में क्या स्वरूप रहता है? अतः जीवादि पदार्थ का विश्लेषण 'काल' न्यास विधि द्वारा किया गया है।

सात तत्त्वों में पहला जीव तत्त्व है। इस जीव के स्वतत्त्व क्या हैं? औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक; ये जीव के स्वतत्त्व हैं।[७५] ये पाँच भाव असाधारण हैं, इसलिए जीव के स्वतत्त्व

७२. सर्वा०सि०, वृ० २४३। ७३. सर्वा० सि०, वृ० २४४। ७४. पं०का०, गा० २७।
७५. तत्त्वा०सू०, अ० २, सू० १।

कहे जाते हैं। इनके क्रमशः दो, नव, अठारह, इक्कीस एवं तीन; इस

प्रकार कुल तिरेपन भाव हैं।[७६] जो गुणस्थान क्रम से अलग-अलग संख्या में पाए जाते हैं। इसी प्रकार आस्रव आदि तत्त्वों-भावों का विश्लेषण 'भाव' रूप में जानना चाहिए।[७७]

'द्रव्य' न्यास विधि की अपेक्षा से जीवादि द्रव्य हैं। **'क्षेत्र'** न्यास विधि की अपेक्षा से जीवादि अस्तिकाय हैं। **'काल'** न्यास विधि की अपेक्षा से जीवादि पदार्थ हैं। **'भाव'** न्यास विधि की अपेक्षा से जीवादि तत्त्व हैं। यही द्रव्य, अस्तिकाय, पदार्थ एवं तत्त्व में अन्तर है।

सत् आदि अनुयोगद्वारों को भी संक्षेप रुचि, मध्यम रुचि एवं विस्तार रुचि शिष्यापेक्षा एवं द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव; न्यास विधि द्वारा घटित किया जा सकता है।[७८]

द्रव्य — सत्, संख्या	द्रव्यापेक्षा	
क्षेत्र — क्षेत्र, स्पर्शन	अस्तिकायापेक्षा	मध्यम रुचि
काल — काल, अन्तर	पदार्थापेक्षा	विस्तार रुचि
भाव — भाव, अल्पबहुत्व	तत्त्वापेक्षा	संक्षेप रुचि

तत्त्वज्ञान की विविध विधायें—जैनागम में मूलरूप से जीव एवं अजीव; ये दो ही द्रव्य जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं।[७९] जीव द्रव्य को नव अधिकारों द्वारा उसके अनेक भेद-प्रभेदों से परमत खण्डन, स्वमत मण्डन की विधि द्वारा विश्लेषित किया है।[८०] अजीव द्रव्य के पाँच भेद-प्रभेदों के स्वरूप द्वारा जीव का हित-अहित का दिग्दर्शन कराया गया है।[८१] इन जीव और अजीव द्रव्यों के ही आस्रव आदि विशेष भेद-प्रभेद हैं,[८२] जिन्हें तत्त्व एवं पदार्थ नाम से सम्बोधित करते हैं। इन्हीं जीवादि तत्त्व एवं पदार्थों के सच्चे श्रद्धान को आचार्यों ने सम्यग्दर्शन कहा है जो आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। इस सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान; संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय रहित सम्यग्ज्ञान कहलाता है।[८३]

७६. तत्त्वा०सू०, अ० २, सू० २। ७७. पं०का०, गा० ८। ७८. सर्वा०, सि०, वृ० ३३। ७९. द्र०सं०, गा० १। ८०. द्र०सं०, गा० २। ८१. द्र०सं०, गा० १५। ८२. द्र०सं०, गा० २८। ८३. द्र०सं०, गा० ४१।

जिनागम में तत्त्वनिरूपण करने की एक प्राचीन शैली भगवन्त

पुष्पदन्त और भूतबलि के द्वारा प्रचारित रही, जिसके अनुसार उन्होंने षट्खण्डागम में सत्संख्या आदि अनुयोगों के द्वारा जीवादि तत्त्वों का वर्णन प्रारम्भ किया है। इस शैली में जीवद्रव्य का वर्णन बीस प्ररूपणाओं के द्वारा किया जाता है। यह शैली अत्यन्त विस्तृत होनेके साथ दुरूह भी है। साधारण क्षयोपशम वाले जीवों का इसमें प्रवेश होना सरल बात नहीं है।[८४]

कुन्दकुन्दाचार्य ने इन तत्त्व, द्रव्य, पदार्थों की व्याख्या मुख्य और गौणरूप से की है और उसे आध्यात्मिकता का पुट देकर सरल बनाया गया है। इनका समय-समय पर टीकाकरण होकर प्रचार-प्रसार बढ़ता गया है।

कुन्दकुन्दाचार्य के बाद उमास्वामी, जिनका दूसरा नाम गृद्धपिच्छाचार्य है; ने सात तत्त्वों का वर्णन सर्वप्रथम संस्कृत की सूत्र शैली में तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ की रचना कर किया, जिसे मोक्षशास्त्र भी कहा जाता है। उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों ने अपने-अपने ग्रन्थों में तत्त्वार्थसूत्र के नाम से ही इसका उल्लेख किया है। इसके ऊपर आचार्यों ने वृत्ति, वार्तिक, भाष्य, टिप्पण आदि अनेक टीकायें लिखीं हैं। इनमें गन्धहस्तिमहाभाष्य टीका की पुष्टि अनेक आचार्यों ने की है।[८५] उन समन्तभद्राचार्य का वैयक्तिक, साहित्यिक, आगमिक एवं दार्शनिक परिचय आज के अनेक विद्वानों द्वारा शोधपूर्णरीति से सङ्कलित है।

—(साभार-तत्त्वार्थसार की प्रस्तावना से)

---

८४. तत्त्वा०सा०, प्र०। ८५. तत्त्वा०सा०, प्र०।

मोक्षशास्त्र के कर्त्ता श्री उमास्वामी का संक्षिप्त जीवनचरित्र

कम से कम लिखकर अधिक से अधिक प्रसिद्धि पाने वाले आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र से जैन समाज जितना अधिक परिचित है; उनके जीवन परिचय के सन्दर्भ में उतना ही अपरिचित है फिर भी संक्षिप्त परिचय जनश्रुति के आधार पर संग्रहीत है—

दिगम्बर शास्त्रों में उनके गृहस्थ जीवन का कुछ भी पता नहीं चलता है। साधुरूप में वह भी कुन्कुन्दाचार्य के पट्ट शिष्य बताये गए हैं और श्री ''तत्त्वार्थसूत्र'' की रचना के विषय में कहा गया है कि सौराष्ट्र देश के मध्य उर्जयन्तगिरि के निकट, गिरनार नाम के पत्तन में आसन्न भव्य, स्वहितार्थी, द्विजकुलोत्पन्न 'सिद्धय्य' नामक एक विद्वान शास्त्र का जानने वाला था, उसने 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह एक सूत्र बनाया और उसे एक पाटिये पर लिख छोड़ा। एक समय चर्यार्थ श्री गृद्धपिच्छाचार्य 'उमास्वामी' नाम के धारक मुनिवर आये और उन्होंने आहार लेने के पश्चात् पाटिये को देखकर उसमें ''सम्यक्'' शब्द जोड़ दिया।

जब वह सिद्धय्य विद्वान् अपने घर आया तो उसने प्रसन्न होकर अपनी माता से पूछा कि किन महानुभाव ने यह शब्द लिखा है ? माता ने उत्तर दिया कि एक निर्ग्रन्थाचार्य ने यह जोड़ा है। इस पर वह गिरि और अरण्य में ढूँढता हुआ उनके आश्रम में पहुँचा और भक्तिभाव से नम्रीभूत होकर उक्त मुनिमहाराज से पूछने लगा कि आत्मा का हित क्या है ? मुनिराज ने कहा कि 'मोक्ष' है। इस पर मोक्ष का स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय पूछा गया, जिसके उत्तररूप में ही इस ग्रन्थ का अवतार हुआ है। इसी कारण इस ग्रन्थ का अपर नाम ''मोक्षशास्त्र'' भी है।

कैसा अच्छा वह समय था ? जब दिगम्बर उपासक सिद्धय्य के लिए एक निर्ग्रन्थाचार्य का शास्त्र रचना करना इसी वात्सल्यभाव का द्योतक है। यह निर्ग्रन्थाचार्य उमास्वामी ही थे। धर्म और उसके लिए

उनने क्या-क्या किया ? यह कुछ ज्ञात नहीं होता। इस कारण इन महान् आचार्य के विषय में इस संक्षिप्त वृत्तान्त से ही संतोष धारण करना पड़ता है। दिगम्बर सम्प्रदाय में वह श्रुतिमधुर 'उमास्वामी' और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में वह 'उमास्वाति' के नाम से प्रसिद्ध है।

—बाबू कामताप्रसाद जी कृत 'वीर पाठावलि' से

आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी उन गौरवशाली आचार्यों में हैं, जिन्हें समग्र आचार्य परम्परा में पूर्ण प्रामाणिकता एवं असीम सम्मान प्राप्त है। उनके सूत्र ग्रन्थ महाशास्त्र-**तत्त्वार्थसूत्र** अपर नाम **मोक्षशास्त्र** को जैन परम्परा में वही स्थान प्राप्त है जो स्थान हिन्दूधर्म में गीता को; ईसाइयों में बाइबिल को और इस्लाम में कुरान को प्राप्त है। अधिकांश **जैन**–मुख्यतः माता-बहिनें इसका प्रतिदिन पाठ करतीं हैं।

मात्र सात-आठ पृष्ठों में समाहित हो जाने वाली इस महानतम कृति के सन्दर्भ में कहा गया है कि—

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः॥

तत्त्वार्थसूत्र के दश अध्यायों के भाव को भलीभाँति जानकर उसका पाठ करने से एक उपवास का फल प्राप्त होता है—ऐसा कथन मुनिपुङ्गवो अर्थात् श्रेष्ठ मुनिराजों द्वारा किया गया है।

गागर में सागर–इस सूक्ति को सार्थक करने वाला यह तत्त्वार्थसूत्र नामक सूत्रग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गये जैन ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है।

सूत्र पद की परिभाषा जयधवल में इस प्रकार प्राप्त होती है—

अल्पाक्षर-मसंदिग्धं सारवद्-गूढनिर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत् तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः॥

जो थोड़े अक्षरों से संयुक्त हो, सन्देह से रहित हो, जिसमें सार भरा हो, गूढ़ पदार्थों का निर्णय करने वाला हो, निर्दोष हो, युक्ति-युक्त हो और यथार्थ हो; उसे बुधजन **"सूत्र"** कहते हैं। **सूत्र "क्रिया" पद रहित होते हैं, इनमें क्रिया का अध्याहार किया जाता है। दशवें अध्याय का पाँचवाँ सूत्र अपवाद है, जिसमें "गच्छति" क्रिया पद लगा हुआ है।**

इस महान ग्रन्थ पर संस्कृत भाषा में आचार्य पूज्यपाद–देवनन्दि ने सर्वार्थसिद्धि नामक वृत्ति, आचार्य अकलंकदेव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक (सभाष्य) और आचार्य विद्यानन्द ने श्लोकवार्तिक (सभाष्य) नामक वार्तिक लिखे; जो आज उपलब्ध हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ से छपे तत्त्वार्थराजवार्तिक में जो बोल्ड टाइप में है और जिन पर संख्या हैं, वे **वार्तिक** हैं और संख्या के बाद जो सामान्य टाइप में मेटर दिया गया है, वह **भाष्य** है। इसी प्रकार श्लोकवार्तिक में वार्तिक; **श्लोक** में है और भाष्य; **गद्य** में है।

जिसमें सूत्रों के पदों का आश्रय लेकर प्रत्येक पद का विवेचन किया गया है, उसे **वृत्ति** कहते हैं।

श्लोकवार्तिक में वार्तिक की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

वार्तिकं हि सूत्राणा-मनुपपत्ति चोदना तत्परिहारो विशेषाभिधानं प्रसिद्धम्—सूत्र का अवतार नहीं होने देने का तथा सूत्रों के अर्थ को सिद्ध न होने देने का ऊहापोह या तर्कणा करना और उसका परिहार करना तथा ग्रन्थ के विशेष अर्थ को प्रतिपादित करना **वार्तिक** है।

सूत्र ग्रन्थों के विस्तृत विवेचन को **भाष्य** कहते हैं।

कहा जाता है कि आचार्य समन्तभद्र ने इस पर गन्धहस्तिमहाभाष्य नामक भाष्य लिखा था जो आज अनुपलब्ध है। कहते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र के मङ्गलाचरण को आधार बनाकर लिखा गया देवागम स्तोत्र अर्थात् आप्तमीमांसा; उस गन्धहस्तिमहाभाष्य का ही मङ्गलाचरण है।

इस मङ्गलाचरणरूप देवागम स्तोत्र अर्थात् आप्तमीमांसा पर भी अकलङ्कदेव ने आठ-सौ श्लोक प्रमाण अष्टशती नामक ग्रन्थ लिखा एवं आचार्य विद्यानन्द ने उक्त अष्टशती को गर्भित करते हुए आठ हजार श्लोक प्रमाण अष्टसहस्री नामक महान ग्रन्थ लिखा।

इनके अतिरिक्त योगीन्द्रदेव कृत तत्त्वप्रकाशिका, अभयनन्दी कृत तत्त्वार्थवृत्ति, श्रुतसागर सूरी कृत तत्त्वार्थवृत्ति, भास्करनन्दी कृत सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति आदि अनेक टीकायें संस्कृत भाषा में प्राप्त होती है।

हिन्दी भाषा में भी इस पर वचनिका के रूप में अनेक टीकायें लिखी गईं हैं। आधुनिक विद्वानों ने भी इस पर कलम चलाई है। इस प्रकार यह जैनदर्शन का सर्वाधिक लोकप्रिय सर्वमान्य सूत्रग्रन्थ है।

इसके नाम में मूल शब्द 'तत्त्वार्थ' है। तत्त्वार्थों का अत्यन्त संक्षेप में प्रतिपादन होने से इस ग्रन्थ का नाम तत्त्वार्थसूत्र रखा गया है। सूत्र का अर्थ ही संक्षिप्त होता है। मूल शब्द तत्त्वार्थ होने से ही सर्वार्थसिद्धि नामक इसकी टीका को तत्त्वार्थवृत्ति, राजवार्तिक नामक वार्तिक को तत्त्वार्थवार्तिक एवं श्लोकों में लिखे गये वार्तिक को तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिक कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन ग्रन्थों में तत्त्वार्थों का सूत्र, भाष्य, वृत्ति और वार्तिकों में प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार सर्वप्रथम विक्रम की द्वितीय शताब्दी के आरम्भ में आचार्य उमास्वामी द्वारा तत्त्वार्थों का सूत्र के रूप में प्रतिपादन किया गया था।

तदुपरान्त छठवीं शताब्दी में आचार्य पूज्यपाद अपर नाम देवनन्दि द्वारा उक्त सूत्रों में प्रतिपादित तत्त्वार्थों का विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए बारह हजार श्लोक प्रमाण तत्त्वार्थवृत्ति लिखी गई, जिसका नाम सर्व-अर्थ को सिद्ध करने वाली होने से सर्वार्थसिद्धि रखा गया।

उसके बाद विक्रम की आठवीं शताब्दी में आचार्य अकलङ्कदेव ने उक्त तत्त्वार्थों का विस्तार से विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए सोलह हजार श्लोक प्रमाण भाष्य सहित वार्तिक लिखे, जिसको तत्त्वार्थवार्तिक, तत्त्वार्थराजवार्तिक अथवा अकेला राजवार्तिक कहा गया।

तदुपरान्त विक्रम की नौवीं शताब्दी में आचार्य विद्यानन्द ने विशेष विस्तार से प्रतिपादन के लिए बीस हजार श्लोकों में भाष्य सहित वार्तिक लिखे, जिसका नाम तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालङ्कार रखा गया, इसे अकेले श्लोकवार्तिक नाम से भी जाना जाता है।

ध्यान रहे; श्लोक प्रमाण में अनुष्टुप् छन्द के बत्तीस अक्षरों का एक श्लोक माना गया है। इसी के आधार पर ग्रन्थों के परिमाण की गणना की जाती रही है।

तत्त्वार्थों के; सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के रूप में प्रतिपादन के अलावा अत्यधिक विस्तार से प्रतिपादन के लिए भाष्य भी लिखे गए।

कहते हैं कि विक्रम की द्वितीय शताब्दी के आचार्य समन्तभद्र ने इस पर चौरासी हजार श्लोक प्रमाण एक महाभाष्य लिखा था; जो अभी अनुपलब्ध है। एक भाष्य श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी लिखा गया है, जिसका नाम तत्त्वार्थाधिगम भाष्य है।

आचार्य कुन्दकुन्द कृत महान ग्रन्थ समयसार, प्रवचनसार और पञ्चास्तिकाय पर अत्यन्त गम्भीर टीकायें प्रस्तुत करने वाले एवं पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय जैसे श्रावकाचार तथा लघुतत्त्वस्फोट जैसे स्तुति-काव्य के रचयिता; दसवीं सदी के आचार्य अमृतचन्द्र ने भी तत्त्वार्थसूत्र को आधार बनाकर तत्त्वार्थसार नामक ग्रन्थ लिखा है; जो गद्य में न होकर पद्य में है।

उक्त ग्रन्थ में भी तत्त्व या अर्थ का नहीं अपितु तत्त्वार्थ का ही विवेचन है। इसके साथ लगा 'सार' पद इस बात का सूचक है कि इस ग्रन्थ में अमृतचन्द्राचार्य के पूर्व लिखे गये तत्त्वार्थप्रतिपादक सभी शास्त्रों का सार समाहित है। यद्यपि यह बात परम सत्य है तथापि

तत्त्वार्थसूत्र के आधार पर लिखे गए इस शास्त्र में आचार्य अकलङ्कदेव के तत्त्वार्थ-राजवार्तिक का विशेष आधार लिया गया है।

अनुष्टुप् (श्लोक) छन्दों में लिखे गये इस तत्त्वार्थसार नामक शास्त्र में कुल मिलाकर ६८६ अनुष्टुप् (श्लोक) छन्द हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त सभी महान ग्रन्थों का मूल आधार मात्र आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र ही है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गई सर्वार्थसिद्धि वृत्ति और तत्त्वार्थराजवार्तिक के सन्दर्भ में कहा गया है कि—

प्रमाण शास्त्र में अकलङ्क का तत्त्वार्थराजवार्तिक और लक्षणशास्त्र में पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि; मूल आधार ग्रन्थ हैं।

१. इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रमाणशास्त्र और लक्षणशास्त्र का मूल आधार भी तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गई टीकायें ही हैं।

२. इसी प्रकार न्यायशास्त्र के आधार ग्रन्थ भी इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण पर लिखी आप्तमीमांसा और उसकी टीका अष्टशती व अष्टसहस्री है।

इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि जैन दर्शन सम्बन्धी प्रमाणशास्त्र, न्यायशास्त्र और लक्षणशास्त्र का मूल उद्गम यही तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ है।

यह भी सर्वविदित ही है कि न्याय का सूत्रग्रन्थ; **परीक्षामुख** भी आचार्य अकलङ्कदेव कृत तत्त्वार्थराजवार्तिक के आधार से लिखा गया है। न्यायशास्त्र में आचार्य माणिक्यनन्दि कृत परीक्षामुख सूत्र का वही स्थान है जो स्थान सिद्धान्तशास्त्रों में तत्त्वार्थसूत्र का है।

परीक्षामुख सूत्र पर लिखी गई अनन्तवीर्य आचार्य कृत प्रमेयरत्नमाला नामक टीका और प्रभाचन्द्राचार्यकृत प्रमेयकमलमार्तण्ड नामक महान ग्रन्थ का न्यायशास्त्र में वही स्थान है जो स्थान सिद्धान्तशास्त्रों में सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिक का है।

इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि सम्पूर्ण न्यायशास्त्र; तत्त्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं का ऋणी है।

प्राचीनकाल में किसी भी विषय के प्रतिपादन के लिए सूत्र, वृत्ति, वार्तिक और भाष्य लिखे जाते रहे हैं। जैनदर्शन में **तत्त्वार्थ** एक ऐसा विषय है, जिसका जानना मुक्तिमार्ग में अत्यन्त आवश्यक है, **क्योंकि मुक्तिमार्ग का मूल सम्यग्दर्शन; तत्त्वार्थों के श्रद्धान का ही नाम है।**

तत्त्वार्थ क्या है ? इसका प्रतिपादन ही इन सभी ग्रन्थों का मूल प्रतिपाद्य है। तत्त्वार्थ सात होते हैं, उनका कथन प्रथम अध्याय के चौथे सूत्र से ही आरम्भ हो जाता है।

मोक्षमार्ग और मोक्ष का प्रतिपादन होने से इसे **मोक्षशास्त्र** भी कहते हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ के **तत्त्वार्थसूत्र** और **मोक्षशास्त्र**—ये दो नाम प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार इस छोटे से सूत्रग्रन्थ पर लिखे गए गम्भीर, विशाल और युक्ति-युक्त ग्रन्थों की समृद्ध परम्परा है। दिगम्बर जैन परम्परानुसार तत्त्वार्थसूत्र के दशों अध्यायों में कुल ३५७ सूत्र हैं—

प्रथम अध्याय में ३३ सूत्र हैं। द्वितीय अध्याय में ५३ सूत्र हैं। तृतीय अध्याय में ३९ सूत्र हैं। चतुर्थ अध्याय में ४२ सूत्र हैं। पञ्चम अध्याय में ४२ सूत्र हैं। षष्ठ अध्याय में २७ सूत्र हैं। सप्तम अध्याय में ३९ सूत्र हैं। अष्टम अध्याय में २६ सूत्र हैं। नौवें अध्याय में ४७ सूत्र हैं। दशम अध्याय में ९ सूत्र हैं।

दशों अध्यायों में पाँचवें अध्याय का ग्यारहवाँ सूत्र; सबसे अल्पाक्षर **"नाणोः"** है। पूरे तत्त्वार्थसूत्र में वर्णमाला के दो वर्ण; **झ** एवं **फ** का प्रयोग नहीं हुआ है।

तत्त्वार्थ सूत्र का मङ्गलाचरण उमास्वामी आचार्यकृत ही है। इस मङ्गलाचरण से अन्यमत के खण्डन एवं चार अनुयोगों की सिद्धि की है।

प्रथम अध्याय के पहले सूत्र में सम्यक् पद की आदि दीपक से सिद्धि की है जो सब टीकाओं से विशेष है।

दूसरे सूत्र में सम्यग्दर्शन को चारों अनुयोगों की अनुभूति में घटाया है। चौथे सूत्र से नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव; इन चारों को सम्यक् एवं मिथ्यारूप समझाया है।

सूत्र संख्या सात में मनुष्य, तिर्यञ्चों एवं देवों को वेदना से सम्यक्त्व क्यों नहीं हैं ? इसका युक्तिपूर्ण समाधान दिया है। सूत्र संख्या तेरह में मतिज्ञान के पर्यायवाची नामों के साथ इति शब्द से प्रतिभा, बुद्धि, मेधा है, किन्तु प्रतिभा का युक्तिपूर्ण दृष्टान्त अन्यत्र दुर्लभ है।

सूत्र संख्या पन्द्रह में अवग्रह, ईहा आदि की सरलतम अभिव्यक्ति। सूत्र संख्या पच्चीस में चारों ज्ञानों का विशेष-विशेष द्वारा खुलासा। सूत्र संख्या उन्तीस के विशेषार्थ की विशेष-विशेषता। सूत्र संख्या तीस के अनुसार चारों ज्ञान एक साथ कैसे हो सकते हैं ? सिद्ध किया है। सूत्र संख्या तैंतीस में सातों नय एक दृष्टान्त के द्वारा घटित किए हैं।

द्वितीय अध्याय के पहले अवतरण सूत्र के लिए प्रथम अध्याय का चौथे सूत्र के प्रथम पद "जीव तत्त्व" को माध्यम बनाया है। सूत्र में पाँचों भावों को पानी द्वारा प्रमाणित किया गया है।

सूत्र संख्या चार में क्षायिक भावों का अन्यत्र दुर्लभ विशेष कथन किया है।

सूत्र संख्या पच्चीस—जीव के यथार्थ मरण की व्यवस्था; दृष्टान्तों द्वारा सिद्धि।

सूत्र संख्या छब्बीस—पूरा वैज्ञानिक सूत्र; जिसमें आज के भौतिक विज्ञान की सिद्धि होती है। इस सूत्र पर विशेष रिसर्च होना चाहिए।

सूत्र संख्या अट्ठाइस में जीव के तीन मोड़े, चार समय की आगमोक्त सिद्धि।

सूत्र संख्या छत्तीस में औदारिक शरीर से जीव का उपकार। सूत्र संख्या तिरेपन में "चरमोत्तमदेहा" पद का माहात्म्य एवं असमय (अकाल) मृत्यु की सिद्धि की है।

तृतीय अध्याय के पहले अवतरण सूत्र के लिए प्रथम अध्याय के सूत्र संख्या इक्कीसवें को माध्यम बनाया है। सूत्र संख्या सत्ताइस में; हुण्डावसर्पिणी काल के बारे में बताया है।

सूत्र संख्या बत्तीस में भरतक्षेत्र का एक-सौ नब्बेवाँ भाग का विस्तार; पूर्णरीति से सिद्ध किया है।

चूँकि इस अध्याय में भौगोलिक विषय होने के कारण अधिक वर्णन गणित विषय का है।

चतुर्थ अध्याय के पहले अवतरण सूत्र के लिए भी प्रथम अध्याय के सूत्र संख्या इक्कीसवें को माध्यम बनाया है। पहले सूत्र में चारों प्रकार के देवों को अन्य प्रकार से लोक प्रचलित मान्यतानुसार बतलाकर यथार्थ देव की सिद्धि की है। सूत्र संख्या चौदह में देवकृत काल विभाग से ज्योतिष देवों का कार्य एवं उनके प्रभाव-माहात्म्य को प्रतीक द्वारा सिद्ध किया है। सूत्र संख्या पच्चीस में लौकान्तिक देवों के दिशा-विदिशाओं में निवास के कारण सुख-समृद्धि के प्रतीक सभी दिशाओं के वास्तु शास्त्र का ज्ञान होता है। प्रथम अध्याय के सूत्र संख्या चार के अनुसार जीवतत्त्व को जीवपदार्थ बनाकर चार अध्यायों में व्याख्यान किया है।

अब क्रम प्राप्त अजीव तत्त्व को अजीव पदार्थ बनाकर उसका कथन **पाँचवें अध्याय में** किया है। इस अध्याय की बहुत कुछ वैज्ञानिक विशेषतायें प्रस्तावना एवं सूत्रों के विशेषार्थों में लिखी है।

अजीव पदार्थ का कथन करने के बाद; क्रम प्राप्त आस्रव तत्त्व है, उस आस्रव तत्त्व को पदार्थ बनाकर **छटवें अध्याय** का कथन किया है।

सूत्र संख्या पाँच में शुभाशुभ आस्रव की पच्चीस क्रियाओं का विशेष-समझने योग्य कथन है। जैसे–स्त्री, पुरुष या पशुओं के आने-जाने, उठने-बैठने के स्थानों में मल-मूत्र विसर्जन करना चौदहवें संख्या की समन्तानुपात क्रिया है। इसमें श्रावक या साधु को ऐसे स्थानों पर मल-मूत्र विसर्जन करने का निषेध इसलिए होता है, क्योंकि जिन स्थानों पर मनुष्य या पशु चलते-फिरते या उठते-बैठते हैं, उन स्थानों पर मनुष्य और पशुओं के शरीर के जीवाणु मिट्‌टी आदि के सहारे नीचे गिर जाते हैं, वे जीवाणु; श्रावक या साधुओं के मल-मूत्र विसर्जन करते समय उनके शरीर पर चढ़ जाते हैं, जिससे अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

सूत्र संख्या नौ में जैन धर्म का वास्तु-शास्त्र है, इसके अनुसार यदि कार्य किया जाए तो व्यक्ति अनेक आस्रवों से बचकर, सुख-समृद्धि की ओर बढ़ सकता है। इस सूत्र के अर्थ का बहुत बार चिन्तन-मनन करते रहना चाहिए। **यह सूत्र M.B.A. का भी सूत्र है। जिसमें समय, श्रम, सम्पदा एवं संक्लेश की बचत होती है, वही M.B.A. है।** सूत्र संख्या दस में निह्नव पद का विश्लेषण आगमोक्त किया है। सूत्र संख्या बारह में सातावेदनीय के आस्रव में अरिहन्त पूजा तत्परता एवं बाल-वृद्ध साधुओं की वैय्यावृत्त्य विशेष महत्त्व रखती है, ऐसा टीकाकार ने कथन किया है।

सूत्र संख्या बाइस एवं तेइस; ये दोनों सूत्र अशुभ नामकर्म एवं शुभ नामकर्म के आस्रव बताने वाले हैं, अत: इन दोनों के कारणों को एक-दूसरों के साथ घटित करने से सूत्र का हृदय समझ में आता है।

सूत्र संख्या चौबीस में शक्तितः त्याग पद में चार प्रकार के दान न लिखकर, औषधिदान को छोड़कर तीन दान ही क्यों लिखे ? इसका विशेष कथन किया है।

छटवें अध्याय के सूत्र संख्या तीन में **शुभः पुण्यस्य.....** कहा है, अतः शुभ क्या है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर इस **सातवें अध्याय** का प्रारम्भ हुआ है।

सूत्र संख्या चार में गुप्ति-समिति का अन्तर एवं आलोकित-पान भोजन का विशेष तर्क पूर्ण कथन है जो अन्यत्र दुर्लभ है। सूत्र संख्या पाँच, छः, सात, आठ तक पाँचों व्रतों की पाँच-पाँच भावनाओं का चिन्तन निरन्तर करते रहना चाहिए। सूत्र संख्या नौ, दश में; पापों में आस्था रखने वालों को उनका परिणाम दिखाया गया है। सूत्र संख्या ग्यारह में **आगमोक्त वैज्ञानिक एवं पर्यावरण पर आधारित कथन किया है,** जिससे मानसिक एवं भौतिक; दोनों प्रकार के प्रदूषणों से बचा जा सकता है। प्राकृतिक संरक्षण संवर्द्धन के लिए ऐसा चिन्तन बहुत जरूरी है।

सूत्र संख्या तेरह में हिंसा की परिभाषा के साथ ही उसके भेदों को बतलाकर विशेष कथन किया है।

सूत्र संख्या अठारह में तीनों शल्यों का विशेष कथन किया है।

सूत्र संख्या तेइस में सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचारों के दृष्टिकोण खोले हैं।

सूत्र संख्या अट्ठाइस में ब्रह्मचर्य व्रत के पाँच अतिचारों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आगमोक्त चित्रण किया है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज एवं धर्म की रक्षा का प्रमुख सूत्र बन सकता है।

सूत्र संख्या उन्तीस में भाण्ड पद को रखने और न रखने के दोनों हेतुओं पर युक्ति पूर्ण विचार किया गया है। सूत्र संख्या तीस में दिग्व्रत के अतिचारों के कारणविशेषों का कथन किया है। सूत्र संख्या इक्तीस में देशव्रत के अतिचारों को स्थूल से सूक्ष्म की ओर कथन करके विषय को स्पष्ट किया है। सूत्र संख्या चौंतीस में अतिथिसंविभागव्रत के अतिचारों में उपवास से उत्पन्न प्रमाद से होने वाले दोषों का आगमोक्त कथन किया है। सूत्र संख्या पैंतीस में सचित्त पद की व्युत्पत्ति से अचित्त पद की निर्दोष स्थापना की है जो चिन्तनीय-मननीय है।

छठवें एवं सातवें अध्याय में आस्रव तत्त्व को आस्रव पदार्थ बनाकर कथन किया है।

अब क्रम प्राप्त बन्धतत्त्व को बन्धपदार्थ बनाकर **"आठवें अध्याय"** का प्रारम्भ किया है।

आठवें अध्याय के प्रथम सूत्र का "चौथा; प्रमाद" पद बन्ध हेतु चिन्तनीय है।

सूत्र संख्या तीन–प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधयः इस एक सूत्र का पूरा विश्लेषण ही इस **आठवें अध्याय** में है। सूत्र संख्या बारह में उच्च-नीच गोत्र का कथन आगमोक्त किया है।

विशेष–सूत्र संख्या पच्चीस के अनुसार शुभ नामकर्म की सैंतीस कर्म प्रकृतियों में परघात नामकर्म की प्रकृति को शुभ नामकर्म में गिना गया है, किन्तु परघात नामकर्म की परिभाषा के अनुसार–जिसके उदय से परशस्त्र आदिक का निमित्त पाकर व्याघात होता है, वह परघात नामकर्म है। ऐसा जो परघात नामकर्म का लक्षण; शुभ कर्म प्रकृतियों में गिना है, उसमें परशस्त्र आदिक का अवलम्बन क्यों लिखा है ?

शस्त्रविहीन; पशु-पक्षी आदि बड़े नाखून, नुकीले-विषैले दाँत आदि के द्वारा दूसरों का घात; स्वयं की रक्षा के लिए करते हैं, इसीलिए इसे परघात नामकर्म की प्रकृति कहा जाता है अर्थात् स्वयं की रक्षा के उपकरण होने के कारण; बड़े नाखून, नुकीले-विषैले दाँत आदि के द्वारा परघात होता है। उसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि परघात की शक्ति स्वयं के पास होती है तभी स्वयं की रक्षा हो सकती है।

मांसाहारी प्राणियों को भोजन आदि के लिए भी बड़े नाखून एवं नुकीले-विषैले दाँतों की आवश्यकता होती है, जिससे वे अपनी भूख को शान्त करते हैं, अतः यह उनकी परघात नामकर्म की प्रकृति है।

मनुष्यों में स्वयं की रक्षा करने की शक्ति; शस्त्र आदि परद्रव्य के निमित्त से आती है, क्योंकि मनुष्यों के पास इतने बड़े, मजबूत नाखून एवं नुकीले-विषैले दाँत आदि नहीं होते हैं। उनके पास; पर-शस्त्र आदि से ही स्वयं की रक्षा करने की शक्ति आती है, अतः उसे परघात कहा जाता है। यहाँ कारण में कार्य का उपचार करने से पर

अर्थात् दूसरे शस्त्र आदि में भी परघात का आरोप किया जाता है, इसी लक्ष्य को सामने रखकर पूज्यपादाचार्य ने परशस्त्र आदि का निमित्त पाकर व्याघात करने को परघात नामकर्म कहा है।

स्वयं के परघात नामकर्म का उदय हो तब पर अर्थात् दूसरों के फलक, कवच आदि आवरण होने पर भी उनका घात होता है, वह परघात नाम कर्म है। *(राजवार्तिक)*

जिस प्रकार मृग को मरुस्थल; उपघात नामकर्म में कारण है, उसी प्रकार मनुष्यों को परशस्त्र आदि परघात नामकर्म में कारण है अर्थात् दूसरों को मारने में कारण है। यदि स्वयं के उपघात नामकर्म का उदय आता है तब स्वयं की रक्षा के लिए रखे गए शस्त्र, विष आदि भी अचानक–अबुद्धि पूर्वक स्वयं के घात के कारण बन जाते हैं। यह मनुष्य के उपघात नामकर्म की विशेषता है, लेकिन स्वयं के शस्त्र-विष आदि को योजना से बुद्धि पूर्वक स्वयं पर प्रयोग करने से आत्मघात कहा जाता है।

यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति–पुण्यगुणों की प्रसिद्धि का कारण यशःकीर्ति नामकर्म है। पाप की निन्दा का कारण अयशःकीर्ति नामकर्म है। इस लक्षण के अनुसार जीव; स्वयं के गुणों और पापों का अनुभव करे तभी उसे यशःकीर्ति या अयशःकीर्ति कहा जाता है।

विशेष–यश फैलता है। कीर्ति गायी जाती है।

स्वयं की जानकारी के बिना यदि कोई हमारी प्रशंसा या निन्दा करता है तो करने वाले को उच्च-नीच गोत्र का आस्रव होगा।

अवर्णवाद–जो प्रत्यक्ष और परोक्ष दोषों से दूर हैं फिर भी उनमें दोष दिखाना अवर्णवाद है। जैसे–कुछ लोग; केवलियों, श्रुत, संघ, धर्म एवं देवों का अवर्णवाद करते हैं। वह दर्शनमोहनीय के आस्रव का कारण है। **अपवाद**–एकांश गुण या दोष का कथन करना अपवाद है। जैसे–सीता का अपवाद हुआ था, क्योंकि सीता का मात्र दोष यही था कि वह रावण के घर रही थी। इसमें सीता का अयशःकीर्ति नहीं था; अपवाद था।

नवें अध्याय में संवर और निर्जरा तत्त्व को; संवर और निर्जरा पदार्थ बनाकर कथन किया है, इस पूरे अध्याय में सूत्र संख्या दो एवं तीन के भेद-प्रभेदों का ही कथन हैं।

सूत्र संख्या सात में बारह भावना के भाव; उनकी प्रतिक्रिया एवं उनके फल का वर्णन किया। सब भावनाओं में बोधिदुर्लभ भावना का विशेष चिन्तन अवश्य करना चाहिए।

सूत्र संख्या नौ में बाइस परीषहों का स्वरूप, उन्हें जीतने के उपायों का वर्णन किया गया है।

दशवें अध्याय में मोक्ष तत्त्व का स्वरूप बताकर मोक्ष पदार्थ का कथन किया है।

सूत्र संख्या दो में वि-प्र; ये दो उपसर्ग हैं, प्रथम मोक्षो पद छूटने के अर्थ में हैं एवं अन्त का "मोक्ष" पद तत्त्व स्वरूप है।

सूत्र संख्या छह एवं सात; ये दोनों सूत्र मुक्त जीव के ऊर्ध्वगमन के हेतु एवं उन हेतुओं को पुष्ट करने वाले दृष्टान्तों के लिए बनाये हैं।

कुछ लोगों की भ्रान्ति है कि संसारी प्राणी भी मरण के पहले ऊर्ध्वगमन करता है, किन्तु इस सूत्र में मात्र मुक्त जीव के ऊर्ध्वगमन के हेतु एवं उस ऊर्ध्वगमन को पुष्ट करने वाले दृष्टान्त ही दिए हैं।

अन्तिम नौवाँ सूत्र मोक्षपदार्थ को सिद्ध करने वाला है।

इस तरह तत्त्वार्थसूत्र के दशों अध्यायों के प्रमुख-प्रमुख सूत्रों के विशेष चिन्तन का सङ्केत यहाँ किया है। विशेष तो पूर्वापर प्रसङ्गों के साथ इस टीका में पढ़ने को मिलेगा ही।

आप सब धैय से इस अनुत्तर-जिज्ञासा को पढ़ने-पढ़ाने का लाभ लें, इसी मङ्गल कामना के साथ।

ॐ नमः

३-१०-२०१४ *कीर्ति नगर—जयपुर (राज०)*

! सावधान भारत !

इक्बीसवीं सदी में मानव जाति के आर्थिक विकास में भौतिक साधनों का विशेष योगदान माना जा रहा है, जिसमें एक प्रमुख साधन है "डिजिटल" इस डिजिटल साधन को पूरे भारत में फैलाने के लिए "डिजिटल इण्डिया" राजनैतिक अभियान चलाया जा रहा है।

आओ विचार करें डिजिटल साधनों से लाभ-हानि क्या है ?

[१] कागज; किताब-कापियों का बोझ कम होगा, बन्द होगा; यह एक लाभ है, किन्तु लिपि-लेखन का अभ्यास समाप्त होगा, कागज का प्रयोग बन्द होने से वृक्षों की खेती-जंगलों को उँगाने-बढ़ाने की चिन्ता नहीं रहेगी, जिससे वनस्पति जगत का विनाश होगा। इसके साथ ही डिजिटल के अप्रयोगी-अवशिष्ट धरती की उर्वरा शक्ति को नष्ट करेंगे, यह हानि है, किन्तु कागज; मिट्टी में मिलकर खाद रूप हो जाते हैं।

[२] दस व्यक्तियों का काम एक व्यक्ति करेगा; यह एक लाभ है, लेकिन नौ व्यक्ति बेरोजगार होने से आतंकवाद, लूटपाट, ब्लैकमेल, कीमती डाटा चोरी आदि कार्य को बढ़ावा मिलेगा-मिलता है, यह हानि है।

[३] मशीन के प्रयोग से मानसिक श्रम नहीं होगा; यह एक लाभ है, किन्तु जब मनुष्य यथार्थ मानसिक श्रम नहीं करेगा तब वह मानसिक विकलांग हो जायेगा, जिससे उसे हर कार्य में मशीनों का सहारा लेना होगा, यन्त्र में वायरस आने पर उसका डाटा डिलीट होगा, जिससे उसे पुनः श्रम करना होगा, यह हानि है।

[४] एक के विकास में दूसरे का सहयोग होना; यह एक लाभ है, किन्तु एक की खराबी या समय पर पूर्ति न होने से काम बाधित होगा, संक्लेश बढ़ेगा; यह हानि होगी। जैसे–लाइट या इन्वेटर के आश्रय से चलने वाले उपकरण, सेल से चलने वाले केलक्यूलेटर अथवा गलत पासवर्ड होने से पूरे हिसाब में गलती होगी।

[५] आर्थिक उत्थान या विकास होना राष्ट्र के लिए गौरव की बात है, किन्तु अनावश्यक आर्थिक उत्थान; मंहगाई, कालाबाजारी को बढ़ावा देती है, जिससे गरीबों का शोषण होता है। आर्थिक लाभ वालों में अहंकार-व्यसनों को बढ़ावा मिलता है, जिससे उनका नैतिक पतन एवं स्वास्थ्य हानि के साथ ही आर्थिक हानि होती है।

[६] भौतिक साधनों का तत्काल लाभ होता है; यह एक लाभ है, किन्तु इससे प्राचीन-निर्दोष आर्थिक दीर्घकालीन लाभ वाले साधनों का लोप हो रहा है, परम्परागत कलायें जो व्यक्ति के आर्थिक लाभ का साधन थीं, उनका लोप हो रहा है।

[७] आगे बढ़ने की होड़ से प्रतियोगितावादी युग में विश्वविजेता बनने के लिए नित्य नये-नये आविष्कारों का जन्म हो रहा है; यह एक लाभ है, किन्तु इन आविष्कारों से मानसिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है, जिससे मानवजाति में आपसी कलह, झूठ बोलना, छल-कपट की उत्पत्ति से प्रेम-विश्वास समाप्त करके मानसिक अवसाद एवं अनैतिक सम्बन्धों को बढ़ावा मिल रहा है, यह मानसिक प्रदूषण का रूप है एवं इन भौतिक साधनों के प्रयोग से जलवायु के प्रदूषण से पशु-पक्षियों की अनेक प्रजातियों का अभाव निरन्तर हो रहा है।

[८] शक्ति प्रदर्शन का अवसर मिलने से हम विकास शील-उन्नत अवश्य कहलायेंगे; यह एक लाभ है, किन्तु हम इससे अपनी मानवजाति के पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों का अवमूल्यन करेंगे।

[९] डिजिटल उपकरणों से समय की बचत अवश्य होगी; यह एक लाभ है, किन्तु शेष बचे हुए समय को अनैतिक तरीके से विलासिता, असमाजिकता में बर्बाद करने की आदत का जन्म होगा।

[१०] सभ्य और प्रगतिवादी होने का खिताब मिलेगा; यह एक लाभ, किन्तु इससे आप अपने नैतिक कर्त्तव्यों एवं महापुरुषों के आदर्श खो रहे हैं।

निष्कर्ष यह है कि यदि हम आमदनी से अधिक खर्च करेंगे तो कर्ज बढ़ेगा और इन्द्रियों की क्षमता से अधिक विषय-सुख भोगेंगे तो मर्ज बढ़ेगा।

! सावधान भारत !

ॐ नमः

२९ अगस्त २०१६

अनगार मुनि अमितसागर
प्रवास-कटनी (म०प्र०)

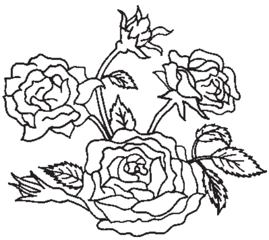

श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

१. बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र–समन्तभन्द्राचार्य
२. श्रीसिद्धचक्र विधान–पं० सन्तलाल
३. सिरी भूवलय–कुमुदेन्दु आचार्य
४. बालगीत–संकलन रचयिता
५. बाल कथा संग्रह (आगम की कहानियाँ)
६. बाल विज्ञान — प्रथम भाग
७. बाल विज्ञान — द्वितीय भाग
८. बाल विज्ञान — तृतीय भाग
९. बाल विज्ञान — चतुर्थ भाग
१०. बाल विज्ञान — पञ्चम भाग
११. तत्त्वार्थसूत्र टीकाः अनुत्तर जिज्ञासा
१२. सरल उच्चारण संग्रह
१३. द्रव्य संग्रह
१४. चौबीस ठाणा
१५. रयणसार
१६. नाममाला (शब्दकोश)
१७. आसान उच्चारण पाठ संग्रह
१८. अनुपम पाठ संग्रह
१९. मन्दिर (हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, कन्नड़, गुजराती)
२०. तत्त्वार्थसार (भारतीय ज्ञानपीठ)
२१. कुरल काव्य (प्रभात प्रकाशन)
२२. गुरु शिष्य दर्पण
२३. धर्म परीक्षा

२४. सम्यक्त्व कौमुदी
२५. श्रेणिक चरित्र
२६. विक्रान्त कौरव
२७. दान चिन्तामणि
२८. दान शासन
२९. भक्तामर शतद्वी
३०. जैन बोधक (धर्म ध्वज विशेषांक, सन् १९५१)
३१. आँखिन देखी आत्मा (प्रवचन संकलन दश धर्म)
३२. अनुत्तर यात्रा (प्रवचन संकलन सोलह कारण)
३३. अन्तरङ्ग के रङ्ग (प्रवचन संकलन षट् लेश्या)
३४. त्रिकाल चौबीसी, कामदेव जिन बाहुबली पूजन
३५. बोलती माटी (महाकाव्य) नया संस्करण
३६. अभिषेक पाठ संग्रह (प्राचीन आचार्यों द्वारा रचित) प्रकाशकाधीन
३७. चौंतीस स्थान दर्शन (सम्पादन) ,,
३८. अपना परिचय (प्रवचन संकलन बारह भावना) ,,
३९. अनर्घ्य अनुभव (कविता-गीत) ,,
४०. अपने-सपने (शायरी–गज़लें) ,,
४१. कल्याण मन्दिर (पद्यानुवाद) ,,
४२. लघुतत्त्वस्फोट–अमृतचन्द्र आचार्य ,,
४३. रिष्टसमुच्चय–दुर्गदेव आचार्य ,,
४४. समवसरण पूजन विधान ,,
४५. समाधि मरणोत्सव दीपक ,,
४६. अथातो आत्म–जिज्ञासा (प्रकाशित)
४७. आचार्य शिरोमणि ,,